अप्रैल - जून २००७

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

१५
रुपये

परमाणु बम विस्फोट के विकिरण से प्रभावित लोगों का एक दर्दनाक दृश्य
(हिरोशिमा 'पीस मेमोरिल म्यूजियम')

न्यूयॉर्क के मैनहटन का वह स्थान जहां वर्ड ट्रेड सेंटर की दो टॉवर्स हुआ करती थीं. आजकल बहुत तेज़ी से मेमोरियल बनाने का कार्य चल रहा है.
(दोनों चित्र : डॉ. अरविंद)

अप्रैल–जून २००७

(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

प्रधान संपादक

डॉ. माधव सक्सेना 'अरविंद'

संपादिका

मंजुश्री

संपादन सहयोग

प्रबोध कुमार गोविल

देवमणि पांडेय

जय प्रकाश त्रिपाठी

हम्माद अहमद ख़ान

संपादन-संचालन पूर्णतः अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

● सदस्यता शुल्क ●

आजीवन : ५०० रु, त्रैवार्षिक : १२५ रु

वार्षिक : ५० रु

(वार्षिक शुल्क ५ रु के डाक टिकटों के रूप में भी स्वीकार्य है)

विदेश में (समुद्री डाक से)

वार्षिक : १५ डॉलर या १२ पौंड

कृपया सदस्यता शुल्क चैक (कमीशन जोड़कर), मनीऑर्डर, डिमान्ड ड्राफ्ट, पोस्टल ऑर्डर द्वारा केवल 'कथाबिंब' के नाम ही भेजें.

● रचनाएं व शुल्क भेजने का पता ●

ए-१० 'बसेरा,'

ऑफ दिन-क्वारी रोड,

देवनार, मुंबई - ४०० ०८८

फोन : २५५१५५४१

e-mail : kathabimb@yahoo.com

(कृपया रचनाएं भेजने के लिए ई-मेल का प्रयोग न करें.)

प्रचार-प्रसार व्यवस्थापक

अरुण सक्सेना

फोन : ९३२२५२१४९०

एक प्रति का मूल्य : १५ रु

कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु १५ रु के डाक टिकट भेजें.

(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)

क्रम

कहानियां

|| ७ || बुआ बहुत बीमार हैं ! / **शशिभूषण बड़ोनी**

|| १० || एक कामरेड की मौत / **कृष्ण कुमार 'आशु'**

|| १४ || रद्दी / **गोविंद उपाध्याय**

|| १८ || सुबह / **गजेंद्र रावत**

|| २१ || भवानी का ब्याह / **चंद्रमोहन प्रधान**

लघुकथाएं

|| २० || नमस्कार / **के. पी. सक्सेना 'दूसरे'**

|| २८ || दंश / **राजेंद्र निशेश**

|| ३६ || अविश्वास / **डॉ. कमल चोपड़ा**

कविताएं / ग़ज़लें

|| १३ || जीवन-चिंगारी / **सुरेश उजाला**

|| १७ || ग़ज़ल / **देवेंद्र पाठक 'महरूम'**

|| ३७ || हक / **मुन्नू लाल**

|| ३७ || स्वीकार / **राहीशंकर**

|| ३७ || बीज / **सलीम अख़्तर**

|| ३८ || राष्ट्र-घाती विपन्नता / **डॉ. रामदुलारे पाठक**

|| ३८ || ग़ज़लें / **राजेंद्र तिवारी**

|| ३९ || भूख से बेख़बर / **अनार सिंह वर्मा**

|| ३९ || ग़ज़लें / **डॉ. नसीम अख़्तर एवं डॉ. सुरेंद्र वर्मा**

|| ४० || सुबह होने से पहले / **डॉ. वरुण कुमार तिवारी**

|| ४० || आश्चर्य मत करना ! / **आनंद बिल्थरे**

स्तंभ

|| २ || 'कुछ कही, कुछ अनकही'

|| ४ || लेटरबॉक्स

|| २४ || 'सागर-सीपी' / **सुश्री संतोष श्रीवास्तव**

|| २९ || वातायन / **डॉ. अरविंद**

|| ३० || पुस्तक-समीक्षाएं

आवरण फोटो : *डॉ. अरविंद*

(जापान के ओकायामा शहर के हन्क्षयाशा उद्यान की कुछ झांकियां)

कुछ कही, कुछ अनकही

पिछले कुछ अंकों से "कथाबिंब" के प्रकाशन में चला आ रहा विलंब धीरे-धीरे कम होता जा रहा था. हमें भरोसा था कि वर्ष के अंत तक पत्रिका नियमित हो जायेगी. किंतु इस वर्ष पहले पूरे मार्च जापान के प्रवास और फिर जून मध्य से अगस्त अंत तक अमरीका के प्रवास ने एक बार पुन: प्रकाशन में अनायास ही गतिरोध उपस्थित कर दिया. यही कारण है कि अप्रैल-जून अंक इतने विलंब से छप सका है. इस अंक में "आमने-सामने" स्तंभ भी नहीं जा सका है. पिछले अंक में "सागर-सीपी" स्तंभ में डॉ. रमाकांत श्रीवास्तव जी का जन्म वर्ष १९२१ के स्थान पर १८२१ चला गया था. इस ग़लती के लिए हमें अत्यंत खेद है. विलंब को कम करने के प्रयास में अगला अंक जून-दिसंबर ०७ संयुक्तांक के रूप में प्रकाशित होगा. आशा है सुधी पाठक हमारी विवशता को समझेंगे. हमारी कोशिश रहेगी कि प्रति वर्ष छपने वाली कहानियों की संख्या में कमी न आये. लेखकों से आग्रह है कि वे हमें अपनी स्तरीय कहानियां प्रकाशनार्थ भेजें.

"कथाबिंब" के नियमित कथाकार श्री जयनारायण जी का कलकत्ते के एक नर्सिंग होम में १८ अगस्त को दिल का दौरा पड़ने से निधन हो गया. वे काफी दिनों से अस्वस्थ चल रहे थे. हमारी हार्दिक संवेदनाएं उनके परिवार-जनों के साथ हैं.

इस अंक में छोटी-छोटी पांच कहानियां जा रही हैं. सभी कहानियां मानवीय संवेदनाओं से ओतप्रोत हैं. पहली कहानी "बुआ बहुत बीमार हैं" (शशि भूषण बडोनी) की बुआ सारे गांव की चहेती हैं. वे गांव में अकेली रह सकती हैं लेकिन शहर किसी तरह रास नहीं आता. "एक कामरेड की मौत" (कृष्ण कुमार "आशु") कहानी में रमाकांत एक जुझारू व्यक्ति है. उसका दबदबा सब ओर है. उसकी हत्या हो जाती है. इसका सब राजनीतिक फायदा उठाते हैं. लेकिन मृत्यु के एक साल बाद किसी को उसकी याद नहीं आती. यहां तक कि हत्याकांड के सभी अभियुक्त भी बरी हो जाते हैं. "रद्दी" कहानी में गोविंद उपाध्याय ने कानपुर के मिल मजदूरों की हकीकत बयान की है जो नयी मशीनों के आ जाने से रद्दी सदृश्य हो गये हैं. देखा जाये तो आज यह हाल देश के सारे मजदूरों का है. राजेंद्र रावत की कहानी "सुबह" शहर में रहने वाले एक न्यूक्लियस परिवार की कहानी है जिसमें घर चलाने के लिए पति-पत्नी दोनों को काम करना पड़ता है. हर सुबह एक नयी दौड़ मदद करने के लिए घर में कोई तीसरा व्यक्ति नहीं है. "भवानी का ब्याह" (चंद्रमोहन प्रधान) अजीबो-ग़रीब परिस्थितियों की कहानी है. भवानी का हाथ पिता का हमउम्र मांग लेता है. लेकिन भवानी के तेवर देखकर अंतत: उसे अपनी ग़लती का अहसास होता है.

पिछले अंक में मैंने अपनी जापान यात्रा का उल्लेख किया था. जनवरी-मार्च ०७ अंक की प्रतियां डिस्पैच होने के कुछ दिनों में ही अमरीका प्रवास का कार्यक्रम बन गया. मेरे पास दो गोष्ठियों के निमंत्रण पत्र आये थे - पहली संगोष्ठी कोलंबस (ओहायो) में १८-२२ जून ०७ को थी. यह अंतर्राष्ट्रीय आण्विक वर्णक्रमदर्शिकी संगोष्ठी पांच दिनों के लिए प्रतिवर्ष जून के तीसरे सोमवार से प्रारंभ होती है. आण्विक वर्णक्रमदर्शिकी विषय में अनुसंधान करने वाले विश्व के सभी वैज्ञानिक इसमें भाग लेने के लिए आतुर रहते हैं. मेरे लिए इस वार्षिक संगोष्ठी में भाग लेने का यह तीसरा अवसर था. इसके अलावा न्यूयॉर्क स्थित भारतीय विद्या भवन के एक्जेक्यूटिव निदेशक व ८वें विश्व हिंदी सम्मेलन (१३-१५ जून) के संयोजक डॉ. पी. जयरामन का भी सम्मेलन में भाग लेने का आमंत्रण आया था. ई-मेल द्वारा मैंने डॉ. जयरामन से संपर्क किया तो मालूम पड़ा कि सम्मेलन में भाग लेने के लिए विदेश मंत्रालय से संपर्क करना पड़ेगा और डिमांड ड्राफ्ट द्वारा मंत्रालय को ९० डॉलर या ४००० रु. भेजने होंगे. किंतु जब तक उनके द्वारा यह जानकारी मिली उससे काफी पहले पैसे भेजने की अंतिम तिथि निकल गयी थी. मैंने कई बार डॉ. जयरामन जी से आग्रह किया कि हिंदी के लिए की गयी मेरी सेवाओं के मद्देनजर निमंत्रण-पत्र आपकी ओर से आया और क्योंकि मैं उन दिनों न्यूयॉर्क में रहूंगा, कृपा करके अपनी ओर से कम से कम २८ वर्षों से महाराष्ट्र से प्रकाशित होने वाली एक मात्र कहानी पत्रिका का संपादक होने के नाते ही उद्घाटन के दिन का तो निमंत्रण-पत्र भेज दें. उनका उत्तर था कि, "अब तो बहुत देर हो गयी, आमंत्रण-पत्र तो मैंने अमरीकी वीज़ा मिलने के लिए भेजा था."

अफ़सोस इस बात का नहीं है कि सम्मेलन की तिथियों में न्यूयॉर्क में मौजूद रहने पर भी सम्मेलन में भाग नहीं ले सका, बल्कि अधिक दुख इस बात का है कि सरकारी तंत्र के सम्मुख डॉ. जयरामन जैसी शख्सियत को भी नतमस्तक हो जाना पड़ा. सम्मेलन में भारत के अलावा विश्व के बहुत से लोगों ने हिस्सा लिया. एक रिपोर्ट के आधार पर ९०० प्रतिनिधियों ने भाग

लिया और चालीस लोगों को पुरस्कृत किया गया. हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघठन की भाषा बनाने की आवश्यकता पर पुनः बल दिया गया. इसके लिए सब सुविधाएं जुटाने में कितना व्यय आयेगा इस पर विचार किया जाना अभी बाकी है. हां, सम्मेलन के आयोजन में ५ करोड़ रुपयों का ख़र्चा आया. १९७४ में नागपुर में आयोजित प्रथम हिंदी विश्व सम्मेलन में मैं शरीक हुआ था. तबसे देश-विदेशों में इससे पूर्व छः हिंदी विश्व सम्मेलन हो चुके हैं. प्रति वर्ष सरकारी व गैर सरकारी संस्थाएं "बड़े धूमधाम" से १४ सितंबर को हिंदी दिवस मनाती हैं. हर आयोजन में लगभग एक-सी बातें कही जाती हैं, पर कहीं इस बात पर विचार नहीं होता कि कब तक हिंदी भारत देश की राष्ट्र भाषा बन सकेगी, इसके लिए क्या करना चाहिए. पहले हिंदी को राजभाषा से विलग अपने देश में राष्ट्रभाषा का दर्जा दीजिए फिर संयुक्त राष्ट्र संघठन की भाषा बनाने की मांग कीजिए !

आज सबसे ज्वलंत मुद्दा है "भारत-अमरीकी न्यूक्लीय करार." जैसा अब तक चला आया है कि हर मुद्दे को हर राजनीतिक दल अपने फ़ायदे के लिए भुनाने की भरसकं कोशिश करता है. दीर्घकालिक लाभ या नुकसान के बारे में हम आंख मूंद लेते हैं. बस कोई मुद्दा हमें सत्ता में कब तक रख सकता है या यदि आज सत्ता नहीं है तो क्या इसका विरोध करने पर हमारे हाथ सत्ता लग सकती है ? देश को विद्युत ऊर्जा की तुरत-फुरत आवश्यकता है. हर बीते दिन के साथ उत्पादन और आवश्यकता के बीच का अंतर बढ़ता जा रहा है. भारत ने न्यूक्लीय अनुसंधान और न्यूक्लीय विद्युत उत्पादन में पिछले ५०-५५ सालों में अरबों-खरबों रुपये ख़र्च किये हैं. हमारे न्यूक्लीय वैज्ञानिक हर तरह से सक्षम हैं और देश में उपलब्ध संसाधनों से बख़ूबी आने वाले वर्षों में काफी कुछ ऊर्जा पैदा कर सकते हैं. इसी परिप्रेक्ष्य में सर्वप्रथम हमें यह मूल्यांकन करना चाहिए कि हम अब तक समय-समय पर घोषित लक्ष्यों को क्यों नहीं पूरा कर सके ? हमेशा से हमारा दावा रहा है कि न्यूक्लीय ऊर्जा के क्षेत्र में आत्मनिर्भर हैं. तमाम प्रतिबंधों के बावजूद हमने परम और अनुपम कंप्यूटर बनाये. १९७४ में न्यूक्लीय विस्फोट के समय हमारा कहना था कि यह शांतिपूर्ण अनुप्रयोगों के लिए यह किया गया था. इसके बाद कई बार हमारे वैज्ञानिकों ने इस दिशा में अन्य प्रयोग करने चाहे लेकिन अमरीका के दबाव में सारी तैयारियों के बावजूद हमें प्रयोग रोक देने पड़े. १९९८ में अमरीकी उपग्रहों की "आंख" में धूल झोंक कर हमने परीक्षण किये. हमसे हमेशा यह कहा गया कि पहले न्यूक्लीय अप्रसार संधि पर हस्ताक्षर करो. इसका हमने सदा ही विरोध किया. फिर अचानक अमरीका क्यों इतना उदार हो गया ? कहीं इसके पीछे उसकी कोई दूसरी मंशा तो नहीं है ? ऐसा तो नहीं है कि पीछे के रास्ते से वह विश्व के इस क्षेत्र में घुसपैठ करना चाहता है? अमरीका ने पिछले २० सालों में कोई भी न्यूक्लीय विद्युतशक्ति रिएक्टर स्थापित नहीं किया है. अमरीका में यूरेनियम संपन्नीकरण के बड़े-बड़े संयंत्र हैं और अपने संयंत्रों को चालू रखने के लिए अमरीका यह संपन्नीकृत यूरेनियम बेचना चाहता है. अन्यथा इन्हें बंद करना पड़ेगा और काफी लोग बेरोज़गार हो जायेंगे. अमरीका का सारा ध्यान आज विखंडन की अपेक्षा संलयन (फ्यूजन) के माध्यम से विद्युत ऊर्जा प्राप्त करने की ओर लगा है. अगर सब कुछ ठीक-ठाक रहे तभी ही कोई भी न्यूक्लीय रिएक्टर स्थापना से कम से कम १० साल से पहले ऊर्जा की पहली इकाई नहीं दे सकता. अगर यह मान लिया जाये कि अगले १५ सालों में ३०,००० मेगावाट ऊर्जा मिलने भी लगेगी लेकिन, तब तक ऊर्जा की कमी को कैसे पूरा किया जायेगा. आतंकवादी गतिविधियों के चलते न्यूक्लीय संयंत्रों की सुरक्षा में हमें काफी ख़र्च करना पड़ता है, काफी लोग लगाने पड़ते हैं इसके अलावा भारत भूकंपीय प्लेट पर है. हमारे न्यूक्लीय संयंत्रों का इंस्पेक्शन अमरीकी करेंगे कि हम नियमों का पालन कर रहे हैं कि नहीं ? अवशिष्ट पदार्थों की हजारों सालों तक सुरक्षा करते रहना भी आसान नहीं है. क्या हमने ऊर्जा के अन्य विकल्प तलाशें हैं ? प्रति वर्ष उत्तर प्रदेश और बिहार में बाढ़ में हजारों लोग मरते हैं. नेपाल के साथ करार करके छोटे-छोटे बांध बना कर काफी सस्ते में, कम खतरा उठा कर पर्याप्त विद्युत पैदा की जा सकती है. घर-घर जाकर, जिस तरह पोलियो अभियान चलाया गया - फिलामेंट का इस्तेमाल करने वाले पुराने पीले बल्बों के स्थान पर सीएफएल बल्ब बांटने से बहुत बचत हो सकती है. शहरों में बहुत सी ऊंची-ऊंची बिल्डिंगों में रात में कॉरीडारों और कमरों में लाइटें जलती रहती हैं. यहां ऐसे संवेदक लगाये जा सकते हैं जो किसी व्यक्ति की उपस्थिति पर ही पूरी लाइट जलायें. सौर्य ऊर्जा जो हमारे यहां असीमित है, उसका भी दोहन हमने अच्छी तरह नहीं किया है. यह मानी हुई बात है कि अमरीका हमारा सगा नहीं है. न्यूक्लीय अनुबंध को अंतिम रूप देने से पूर्व इसके हर पहलू पर सरकार और सभी बुद्धिजीवियों को अच्छी तरह विचार करना चाहिए. क्योंकि इससे भारत की आने वाली सभी पीढ़ियां प्रभावित होंगी. आज का एक ग़लत कदम हमारी संप्रभुता को हमेशा के लिए खतरे में डाल सकता है. इसमें दलगत राजनीति आड़े नहीं चाहिए.

अरविंद

लेटर बॉक्स

❋ "कथाबिंब" जनवरी-मार्च ०७ मिला. इस अंक के संपादकीय ने प्रतिक्रिया लिखने को बाध्य किया है. वैसे सभी रचनाएं भी मानवीय संवेदना से लबालब हैं.

हिंदी के प्रति आपकी चिंता लाज़िमी है. मैं आपकी चिंता से सहमत हूं. आज़ादी के इतने वर्षों बाद भी हिंदी, अंग्रेजी की दासी बनी हुई है, आख़िर क्यों ? हिंदुस्तानी सत्ता के शीर्ष पर काबिज रहनुमाओं की नजर में सत्ता सुख की लोलुपता बसी रहती है. देश की आम जनता से ख़ुद को ऊपर मानने की प्रवृत्ति से ग्रस्त ये सफ़ेद पोश अंग्रेजीयत में जीने को अपना स्वाभिमान समझते हैं. अंग्रेजी को मात्र १५ वर्षों की मोहलत मिली थी हिंदुस्तान की आज़ादी के बाद. आज ५७ वर्ष गुज़र गये. परिस्थितियां और भी बदतर हो गयीं. हर साल १४ सितंबर को हिंदी की कसमें खाने वाले अंग्रेजी को लगातार प्रोत्साहित करते रहे हैं. मगर भारतीय जन गण हिंदी को अपना सब कुछ मानता है. इसलिए प्रभु-वर्ग के अंग्रेजी प्रेम के बावजूद हिंदी का दायरा बढ़ता गया है. भारतीय राजनीति अंग्रेजी से क्यों चिपकी हुई है आख़िर ? पूरे यूरोप के ४३ देशों में जब ४० की भाषा अंग्रेजी नहीं है. एशिया के ४८ देशों में ४७ की भाषा अंग्रेजी नहीं है. दक्षिण अमरीका के १२ देशों में ९ की भाषा अंग्रेजी नहीं है. फिर भारत की धरती पर अंग्रेजी क्यों फल-फूल रही है ? केवल इसलिए कि ब्रिटेन, आयरलैंड, अमरीका, कनाडा, मैक्सिको और एंटीगुआ की भाषा अंग्रेजी है ? यह तो सरासर ब्रिटेन और अमरीका की गुलामी की स्वीकृति है. आपने जापान की यात्रा के अनुभव दिये हैं, बहुत अच्छा लगा. मुझे तो शर्मिंदगी तब महसूस होती है, जब देश का प्रधानमंत्री कैंब्रिज में अंग्रेजी का गुणगान करता है. क्या हिंदुस्तान इन अंग्रेजीपरस्तों के रहते कभी हिंदी को स्वाभिमान दे सकेगा ? अमरीकी साम्राज्यवाद का कुकृत्य द्वितीय विश्वयुद्ध काल से अब तक जारी है. भूमंडलीकरण इसका बदला हुआ चेहरा है. कभी जापान, कभी अफगानिस्तान, कभी ईराक...कभी हिंदुस्तान इसके लक्ष्य हैं. रूप बदला है. अंग्रेजीयत इसका सांस्कृतिक उपकरण है. इसे तोड़कर ही हिंदी को उसका वांछित अधिकार दिया जा सकता है.

अंग्रेजी के प्रति सत्ताधारी वर्ग का मोह हमारी मानवीय संस्कृति का सर्वनाश तो कर ही रहा है तमाम मानव मूल्यों को नेस्तनाबूद करते हुए आर्थिक गुलामी के भयंकर मकड़जाले में भी फंसाता जा रहा है. पूरी दुनिया जानती है कि डेनमार्क में डेनिस, चेक गणराज्य में चेक, रूस में रूसी, स्वीडेन में स्वीडिस, जर्मनी में जर्मन, स्वीट्जरलैंड-पोलैंड में पोलिस, इटली में इटालियन, ग्रीस में ग्रीक, बुल्गारिया में बुल्गेरियन, यूक्रेन में यूक्रेनियन, फ्रांस में फ्रेंच, स्पेन में स्पेनिस, दक्षिण अमरीका के देशों में स्पेनी, ब्राज़ील में पुर्तगाली, मारीसस में भोजपुरी, सूरीनाम-गुयाना में हिंदी भोजपुरी, अजन बेजान में अजेरी और तुर्की, अर्मेनिया में अर्मेनियन, इस्राइल में हिब्रू, ईरान में फारसी, उजबेकिस्तान में उजबेक, ओमान, सऊदी अरब, सीरिया, ईराक, जार्डन, यमन, बहरीन, कतर और कुवैत में अरबी; चीन, ताइवान, सिंगापुर में मंदारिन; इंडोनेसिया में डच, दोनों कोरिया में कोरियाई, श्रीलंका में सिंहली व तामिल, कंबोडिया में खमेर, अफगानिस्तान में पश्तो, पाकिस्तान में उर्दू, तुर्की में तुर्की और मालदीव में दिवेही भाषाएं मुख्य हैं, तो हिंदुस्तान जैसे महान देश में हिंदी को वह गरिमा क्यों नहीं दी जाती. इक्कीसवीं सदी में भी अंग्रेजी भाषा की गुलामी, ब्रिटिश-अमरीकी सत्ता की ठकुर सुहाती है या राजनीतिक तुष्टीकरण के जरिये सत्ता में बरकरार रहने की लोलुपता ? मगर भारतीय जनता तो होश में है. बावजूद इसके रोज़ी रोटी के लिए अंग्रेजी की विवशता उसे सताती है. यह एक विचारणीय मुद्दा है.

'पहली थाली' कहानी ने बख़ूबी प्रभावित किया. शेष कहानियां भी अच्छी रहीं. डॉ. तारिक असलम तस्लीम की आत्मरचना में बहुत सारी सूचनाएं मिली.

पहली थाली की बूढ़ी मां की तरह अब तमाम मांएं असहाय होती जा रही हैं. जबसे व्यक्तिवादी सोच भारतीय समाज पर हावी हुई है बुजुर्गों का स्वाभिमान धराशायी हुआ. भूमंडलीकरण की हवा ने उसे और तेज़ किया है. हां इस बीच समीरा जैसी तनी हुई मुट्ठियों की तादाद बढ़ी है, यह संतोष की बात है.

✣ सुरेश कांटक

कांट (ब्रह्मपुर), बक्सर (बिहार) ८०२११२

❋ "कथाबिंब" जन.-मार्च ०७ का अंक प्राप्त हुआ. प्रथमतः "कथाबिंब" के २९ वें वर्ष में प्रवेश करने पर मेरी ओर से अशेष शुभकामनाएं स्वीकारें. 'कथाबिंब वार्षिक पुरस्कार' की घोषणा का भी मेरी ओर से पुरज़ोर स्वागत है. इस बार आपका संपादकीय कई महत्तपूर्ण प्रश्नों को उकेरता है. सचमुच सूचना और प्रौद्योगिकी के इस युग में हमें भाषा को लेकर एक स्वस्थ नीति अपनानी चाहिए. आपके विचार स्वागत योग्य हैं. काश ! ऐसा हो पाता. प्रस्तुत अंक अपनी प्रतिष्ठा के अनुरूप है. सभी रचनाएं स्वस्थ और सुंदर हैं. आमीन !

✣ उदय शंकर सिंह 'उदय'

गीतांबरा, सहबाजपुर,

पो. भीखनपुर कोठी, मुजफ्फरपुर (बिहार) ८४२ ००४

❋ "कथाबिंब" के अंक नियमित मिल रहे हैं. लघु पत्रिकाओं की दुनिया में, यह पत्रिका अपनी सादगी और सार्थकता से प्रभावित करती है. एक अंतरंग संबंध बनता है. जिस मनोयोग से आप इसे निकाल रहे हैं, वह सराहनीय है और अनुकरणीय है. आपका संपादकीय भी एक संवाद कायम करता है. मेरी शुभकामनाएं आपके साथ हैं.

✣ डॉ. सी. भास्कर राव

५९/बी-रोड, एयरवेस कॉलोनी, कदमा, जमसेदपुर ८३४००५

❋ "कथाबिंब" जनवरी-मार्च ०७ का अंक मिला. वर्ष २००६ के 'कथाबिंब पुरस्कारों' के लिए 'पोस्टकार्ड कांड' की जानकारी मज़ेदार है. वैसे आप जान लीजिए कि 'कथाबिंब पुरस्कार' बहुत पहले से ही विशिष्ट माने जाते हैं. हिंदी साहित्य में "कथाबिंब" ने अपनी जगह स्वयं बनायी है.

डॉ. रमाकांत श्रीवास्तव जी से श्री राजेंद्र वर्मा की बातचीत महत्वपूर्ण है.

✤ कमल

डी-१/१, मेघदूत अपार्टमेंट, मेरीन ड्राइव रोड, कदमा, जमशेदपुर (झारखंड) ८३१००५

❋ "कथाबिंब" जन.-मार्च ०७ का अंक मिला, एक ही बैठक में पूरा पढ़ डाला. इस अंक की सर्वश्रेष्ठ कहानी 'कसी हुई मुट्ठियां' में डॉ. सतीश दुबे ने दफ़्तर की युवा महिला कर्मचारी पर अनोखा प्रयोग किया है. साधारणतः बॉस युवा महिला को अपनी हवस का शिकार बनाना चाहते हैं. मगर कहानी में बॉस अपने बिगड़ैल बेटे के लिए उसका रिश्ता मांगता है. दरअसल, शिल्प की दृष्टि से कहानी बहुत कसी हुई है. लोग देवदासियों को सुधारने की बात ज़रूर करते हैं मगर वे वहां वापस नहीं जाना चाहतीं जहां से समाज ने इन्हें धकेला है. पुलिस भी कुछ नहीं कर सकती है, यह बात संजीव निगम की 'मशाल जल उठी जब' कहानी में बख़ूबी उभर कर आयी है. 'सरहदें' (डॉ. तारिक असलम) भी एक अच्छी कहानी है. मुसलमानों पर इतना क्रूर लिख देना अपने को फ़तवा जारी करवाने के लिए पर्याप्त है. दरअसल इस कहानी में जिस समस्या को उठाया गया है वह मुस्लिम समाज की नग्न सच्चाई है. शेष कहानियां इतना प्रभावित नहीं करतीं. लघुकथाएं भी अच्छी हैं. कविताएं भी ठीक हैं.

✤ रमेश मनोहरा

सीतला गली, जावरा (म. प्र.) ४५७ २२३

❋ "कथाबिंब" जन.-मार्च ०७ का अंक मिला. डॉ. देवेंद्र सिंह की कहानी 'पहली थाली' पढ़कर मन द्रवित हो गया. यह कहानी वर्तमान समय की घर-घर की कहानी है. हर घर में बेटा-बहू बूढ़ी मां के साथ आजकल इसी तरह का सलूक कर रहे हैं. पता नहीं बहू ऐसा तेवर लेकर ससुराल क्यों आती है जबकि उसे भी कभी मां बनना है. बेटा भी पता नहीं क्यों बहू के आगे भेड़ बन जाता है. गरज कर नहीं कह सकता कि मां, मां होती है, उसी के कारण यहां आज मैं हूं, तुम हो ! मां के साथ मिलजुलकर रह सकती हो तो रहो, नहीं तो बाहर का रास्ता नापो, दरवाज़ा खुला है.

'आमने-सामने' में असलम तस्नीम शतप्रतिशत ठीक कहते हैं कि हिंदी साहित्य में काल गर्ल्स का रैकेट चल रहा है. अनेक विषकन्याएं इस प्रांगण में रमण कर रही हैं. जब हम नेताओं, पुलिस, न्यायालय आदि की विसंगतियों पर अपना आक्रोश व्यक्त कर सकते हैं तो साहित्यकारों की विसंगतियों पर क्यों नहीं ?

✤ उल्लास मुखर्जी

पानी टंकी चौक, मेन रोड, मधेपुरा (बिहार) ८५२ ११३.

❋ "कथाबिंब" का जनवरी-मार्च ०७ अंक मिला. इस अंक में सभी कहानियां स्त्री केंद्रित हैं. परंतु लेखक महिला और पुरुष दोनों ही हैं. डॉ. निरुपमा रॉय की कहानी 'मां की बेटी नयनतारा' शीर्षक कहानी अच्छी लगी. यदि कहानी की मां की तरह सब माताएं हो जायें तो भारत सचमुच संविधान का भारत बन जायेगा. व्यवहार में देश में कुछ उल्टा हो रहा है. डॉ. सतीश दुबे की कहानी दफ़्तर में काम करने वाली महिलाओं की ज़िंदगी पर रोशनी डालती है. इस प्रकार अन्य कहानियां भी महिलाओं की ज़िंदगी का दर्पण हैं. कविताएं भी सोद्देश्य हैं. सामग्री चयन तथा संपादन के लिए बधाई स्वीकारें.

✤ नंदकिशोर नौटियाल

अध्यक्ष, महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी, पुराना जकात घर, शहीद भगतसिंह मार्ग, मुंबई ४०००२३.

❋ "कथाबिंब" (जन.-मार्च ०७) मेरे हाथों में है. आपने वर्ष २००६ का 'कहानी पुरस्कार' हथियाने के कतिपय लेखकों की निंदनीय करामत का पर्दाफ़ाश किया. मज़ा आ जाता, यदि आप उन 'महान आत्माओं' के शुभ नाम भी छाप देते. इससे हज़ारों साहित्यकारों-पाठकों के बीच उनका असली चेहरा सामने आ जाता. ख़ैर ... इतना तो तय है कि तमाम पाठकों ने उन 'अज्ञात जनों' की इस स्वार्थांध मनोदशा पर 'थुकास' का अनुभव किया ही होगा, भले ही थूक न सकें. तय तो यह भी है कि उक्त असफल एवं निराश 'कागराज' अब आपसे संपर्क साधने में झेपेंगे. इस घृणित कृत्य से एक बात स्पष्ट है कि विसंगतियों पर लेखनी घिसनेवाले लेखकों का एक 'बड़ा वर्ग' स्वयं ही तमाम विसंगतियों-विद्रूपताओं की गिरफ़्त में है. जो स्वयं 'साहित्य' को जी नहीं सकता, उसका साहित्यकार-रूप ठीक वैसे ही है जैसे कोई 'कौवा' किसी 'हंस' का रूप धारणकर समाज के समक्ष प्रस्तुत हो गया हो. बहरहाल, उक्त 'कागराजों' को लानत तथा इस संदर्भित पुरस्कार के सच्चे विजेताओं (असली 'हंसों') को अशेष बधाइयां.

इस बार 'सागर-सीपी में' डॉ. रमाकांत श्रीवास्तव के साक्षात्कार से एक मौन साधक की छवि उभरकर आयी है. तमाम प्रोपोगेंडा से दूर अपने सृजन-कार्य में वे लगे हैं. प्रभु उन्हें दीर्घायु प्रदान करे. काव्य में इस बार ('बंटवारा' शीर्षक गीत छोड़कर) लगभग सभी रचनाएं पसंद आयीं जिसमें महेश कटारे ने सर्वाधिक प्रभावित किया. इसके अलावा अशोक सिंह आदि भी रुचिकर लगे.

'आमने-सामने' में तारिक असलम ने कुछ महत्वपूर्ण बिंदुओं पर सटीक प्रतिक्रिया दी है, लेकिन कहीं-कहीं लगा कि उनके ज़ेहन में साहित्य से ज़्यादा लोगों की कारगुज़ारियां हावी हैं.

✤ जितेंद्र 'जौहर'

एन-३३/६, रेणुसागर, सोनभद्र (उ. प्र.) २३१ २१८

✽ "कथाबिंब" जन.-मार्च ०७ का अंक मिला. मुख्र पृष्ठ पर जापान के हिरोशिमा शहर के उस हिस्से का चित्र है जहां द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान अमेरिका ने परमाणु बम गिराकर, लाखों निर्दोष बच्चों-बूढ़ों-औरतों को मौत की नींद सुलाकर विश्वयुद्ध का उपसंहार किया था. संपादकीय में युद्धोपरांत आपान की समृद्धि, अपनी भाषा के प्रति प्रेम एवं प्रतिबद्धता और दृढ़ संकल्पित मन से राष्ट्र का पुनर्निर्माण का विवरण हम सब के लिए अनुकरणीय व प्रेरणास्पद है !

इस अंक की कहानियों में, डॉ. निरुपमा राय की कहानी 'मां की बिटिया नयनतारा' में मातृ हृदय की करुणा और ममता की मार्मिकता अभिव्यक्त हुई है. डॉ. देवेंद्र सिंह की कहानी 'पहली थाली' में वृद्धा मां और बेटे-बहू के बीच रेत होते रिश्ते का चित्रण है. वृद्धा मां पल-प्रतिपल बहू की लांछना और बेटे की प्रताड़ना से व्यथित होकर अंत में अपनी संपूर्ण गरिमा और अस्मिता के साथ बहू-बेटे के यहां से वापिस गांव जाने का निश्चय कर लेती है. कहानी के पात्र, कथ्य और वर्णित यथार्थ इतना सहज और स्वाभाविक है कि जीवन की विभिन्न कोणों से खींची गयी तस्वीर-सी जान पड़ती है. सुप्रसिद्ध कथाकार सिद्धेश की कहानी 'सुबह की चाय' अपनी-अपनी गृहस्थी सजाये बेटों से अलग रहते वृद्ध मां-बाप की आक्रांत चेतना और जीवन के रोयें-रेशे में रची-बसी समकालीन यथार्थ की वेदना को अभिव्यक्त करती है तथा पाठकों के समक्ष एक यथार्थ संसार रचती है. डॉ. सतीश दुबे की 'कसी हुई मुट्ठियां' पितृहीना नवयुवती की नैतिकतापूर्ण संकल्पित मन की कहानी है, जिसमें समीरा अपनी एक स्पष्ट पहचान और निखरा-संवरा व्यक्तित्व लिये हुए है, जो नारी के विशिष्ट आदर्शरूप का प्रतिनिधित्व करता है. संजीव निगम की कहानी 'मशाल जल उठी जब' में येलम्मा का एक वाक्य 'वापस कमाठीपुरा अपने अड्डे पर' नारी की अस्तित्व-रक्षा संबंधी समस्त सामाजिक संरचनाओं की पोल खोल देता है. 'सरहदें' कहानी में डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम' ने दो संप्रदायों के बीच उग आने वाले अलगाव के अहसासों के कारणों को सूक्ष्मता से चित्रित करने और उसके निराकरण के सामाजिक बोध को मुखरित करने का प्रयास किया है. 'सागर-सीपी' में वरिष्ठ कथाकार डॉ. रमाकांत श्रीवास्तव का बहुआयामी व्यक्तित्व तथा साहित्यिक अवदान प्रेरणाप्रद एवं जानकारीप्रद है. अंक की कविताएं और अन्य रचनाएं अच्छी हैं.

✣ डॉ. बसंत कुमार तिवारी

वीरपुर (बिहार) ८५४३४०

✽ "कथाबिंब" का जन.-मार्च ०७ अंक मिला. कथाप्रधान पत्रिका में पांच कहानियों के स्थान पर छः के बजाये सात कहानियां प्रकाशित करें तो २८ वर्ष पुरानी पत्रिका की कथा-प्रधानता में और वृद्धि होगी. सात का अंक अनेक मानों में शुभ है, महान है - सप्त द्वीप, सप्त ऋषि, सप्त लोक, सात दिन, सात अजूबे... वर्ष २००७ से सात कहानियों का प्रकाशन पाठकों को पसंद आयेगा !

मेरी पसंदीदा कहानी 'जंगल' को 'कथाबिंब पुरस्कार-०६' के अंतर्गत उत्तम कहानी पुरस्कार मिला, यह ख़ुशी की बात है. सभी विजेताओं को बधाई ! पत्रिका में प्रकाशित लघुकथाओं को भी पुरस्कृत करने का उपक्रम करें तो श्रेयस्कर होगा. 'क्षणिकाएं' विधा को भी प्रोत्साहित करें.

इस अंक में प्रकाशित "कथाबिंब" के हितैषी लेखक डॉ. सतीश दुबे की कहानी 'कसी हुई मुट्ठियां' श्रेष्ठ लगी. ऐसी ही कहानियां नारी सशक्तिकरण को सार्थक करती हैं. समीरा का अपने पिता के प्रति कर्तव्य बोध और भाई के भविष्य के प्रति चेतनता लाड़ले बेटों के लिए एक पाठ है, एक सबक है. सुख और भोग को तरज़ीह न देकर ही संघर्ष के रास्ते पर चला जाता है. दैन्यता, पलायन और आत्मघाती मानसिकता को त्याग कर ही कर्तव्य पथ पर चलने की सामर्थ्य पैदा होती है. कहानी में दफ़्तर का माहौल असलियत के करीब है. ईमानदार आदमी को कहीं भी गोल छेद में चौकोनी खूटी की तरह फिट रहना पड़ता है. अनुकंपा नियुक्त समीरा की मां का कहना - 'रुपये पैसे की कमी तो नहीं ... कुल की देवी लक्ष्मी हो ...' कहानी की कमज़ोर कड़ी लगती है.

✣ रवींद्रनाथ सिंह चौहान

१३८-ए, रोड नं.-२, सौभाग्यपुरम कॉलोनी,
कोत्तापेट, हैदराबाद (आं. प्र.) ५०० ०३५

पाठकों / ग्राहकों से निवेदन

कृपया 'कथाबिंब' की सदस्यता राशि मनी ऑर्डर से भेजते समय, मनी ऑर्डर फॉर्म पर 'संदेश के स्थान' पर अपना नाम, पता पिन कोड सहित साफ़-साफ़ लिखें. मनीऑर्डर भेजने के बाद पोस्टकार्ड पर पूरे पते सहित इसकी सूचना अवश्य दें. आपकी सदस्यता अगले अंक से लागू होगी. पते में परिवर्तन की सूचना भेजते समय कृपया नये पते के साथ पुराने पते का उल्लेख करना न भूलें.

कहानी

बुआ बहुत बीमार हैं !

इस बार गांव कई वर्षों बाद जा पाया. बच्चों के मूल निवास प्रमाण पत्र बनवाने जाना पड़ा. गांव जाना कई वर्षों से बहुत कम हो गया है. कई बार प्रोग्राम बनता और फिर टलता रहता है. ऐसा नहीं कि मैं ही अब गांव कम जा पाता हूं... गांव से निकले अधिकांश नौकरी पेशा लोगो का यही हाल है...और कई तो धीरे-धीरे इसी तरह हमेशा के लिए गांव से पलायन करते जा रहे हैं. अबकी बार ही गांव मे ऐसे बहुत सारे लोग मुझे दिखाई दिये जो कई वर्षों बाद शहर से गांव लौटे थे. और कुछ तो मेरी ही तरह बच्चों के मूल निवास प्रमाण पत्र बनवाने ही मजबूरन आये थे, नही तो शायद वह भी नहीं आ पाते.

हमारा गांव का घर कई वर्षों से बिना देखभाल के वीरान...खंडहर सा पड़ा है. कुछ वर्षों पहले जब बुआ कुछ ठीक-ठाक थी तो वह घर-आबाद बनाये रखती थीं. भले ही बुआ साध्वी का सा जीवन यापन करती थी... लेकिन उनके रहने से कम से कम घर आबाद तो रहता था. बुजुर्गों की यह बात कहना बिल्कुल सही लगता है कि घर तो उसमें रहने वालो से आबाद रहता है... घर कहलाता है... वरना मकान के ढांचे को तो घर नही कह सकते हैं.

बुआ का अतीत मुझे बहुत संघर्ष भरा... उलझन भरा... तनाव व अवसाद भरा अनेक प्रकार की समस्याओं से भरा लगता रहा है... और बुआ उन संघर्षों... तनावों... दबावों को झेलती हुई तथा अपनी अपराजेय छवि के कारण धूल चढ़ाती नज़र आती रही हैं हमेशा. लेकिन इधर उनकी याददाश्त कुछ वर्षों से क्षीण होने लगी है... उन्हें अब दिनभर की बातें भी याद नहीं रहतीं. बहुत कमज़ोर भी हो गयी हैं. उन्हें अपने भीतर का होशोहवाश भी अब धीरे-धीरे कम लगने लगा है. खाने-पीने-सोने कपड़े पहनने का काम भी बस चलताऊ ढंग से ही कर पाती हैं. किसी तरह. अब उन अकेली जान के लिए... जबकि कोई भी उनकी सेवा टहल करने वाला नहीं है... यह बहुत बड़ी भारी विकट समस्या उनके लिए उत्पन्न हो गयी है.

हमारा गांव पहाड़ का एक सुदूरवर्ती गांव है. तमाम चढ़ाइयों और उतराइयों भरे रास्ते... छोटी से छोटी मूलभूत सुविधाओं से भी विहीन है. बुआ की सक्रियता व परिश्रमपूर्वक काम करते रहने के बारे में गांव में अक्सर चर्चा होती है. बुआ को कभी आलस्य करते किसी ने नहीं देखा. हमेशा कुछ न कुछ काम करती वे दिखती. गांव भर के लोगो के हर तरह के सुख-दुख में भागीदारी निभाती देखी जाती. लेकिन अब ऐसा भी नही कि गांव वालो ने उनसे खुद को अलग कर लिया हो... वह अब भी यथासंभव उनकी मदद करते ही हैं.

उनके पास पड़ोस मे हमारे दीदी... चाचा... ताऊ या उनके बच्चे उनके खाने-पीने, कपड़े, साथ रहने, उनकी साफ़ सफ़ाई आदि का पूरा इंतजाम कोई न कोई करते ही रहते हैं. वह अब अपने घर मे बहुत कम... कभी-कभार ही खाना बना पाती हैं. लेकिन शुक्र है कि गांव मे अभी भी सहयोग की भावना शेष है. बुआ का ध्यान कोई न कोई अवश्य रखता ही है. बल्कि मैंने देखा कि ड्यूटी की तरह सब समझकर उनकी देखभाल करते हैं. मैं सोचता हूं... किसी अकेले व्यक्ति को शहर में रहते हुए ख़ुदा न खास्ता यह इस तरह की बीमारी हो जाये तो मैं समझता हूं वह कुछ ही दिन मे ज़िंदगी से हार मान जाये. दरअसल शहरों मे तो सहयोग की भावना गांव की बनिस्पत बहुत कम बची हुई है. वहां अपने-अपने स्वार्थ और अहम सर्वोपरि हो गये हैं. लेकिन शुक्र है कि गांवों मे अभी ऐसा नहीं है. वहां सहयोग की भावना शेष है... संवेदनाएं एकदम मरी नहीं हैं... वहां मिल बांटकर भी सब आपस मे समस्या का समाधान निकाल ही लेते हैं.

शशिभूषण बड़ोनी

गांव में मैंने देखा... कोई बुआ को अपने यहां खाना खिला रहा है तो बगल वाले पड़ोसी को भी हिदायत दे रहा होता है... "बेटे... सुबह का ख़याल रखना, खाने-पीने का... मैं कल सुबह शहर जा रहा हूं..." मेरा ही चचेरा भाई वीरेंद्र जो गांव में ही रहकर ब्रह्म वृत्ति आदि का काम भी करता है... अपने बच्चो को समझा रहा होता है -"बेटी... बुआ का ध्यान रखना... यदि मैं कल घर पर नहीं रहूं... तो तुम व उपासना कल उन्हें गर्म पानी कर अच्छी तरह नहला देना बेटी... उनकी सेवा ही सच्ची ईश्वर सेवा है... इस अवस्था मे उनकी सेवा करना बड़ा पुण्य का काम है..." वास्तव में मेरे चाचा, ताऊ या मेरे पिताजी ने बुआ को कभी भी सगी बहन से कम नहीं समझा. हालांकि बुआ अकेली बहन थी और उनका सगा कोई बचपन में ही गुज़र

ाया था पहले मैं बुआ को अपने यहां देहरादून मे रहते हुए कभी महीने दो महीने के लिए अवश्य ही बुला लेता था. हालांकि बुआ शहर मे ज्यादा दिन नहीं टिक पाती थी. कुछ ही दिनों बाद बुआ का मन शहर की आपा-धापी या शायद सब लोगों के अपने मे ही व्यस्त रहने के कारण ऊब जाता था... और वह गांव जाने की जिद करने लगती थी. हमे महसूस होता कि बुआ का मन बस अधिक गांव मे ही रमता है. शहर में वह बस कुछ दिन ही केवल बदलाव के लिए आ पाती. बुआ को शहर में रहने वाले गांव के हम कई भाई लोग अपने यहां बुलाते रहते. दरअसल हमारे पहाड़ो में यह परंपरा भी लगभग सभी जगह है कि किसी भी सामाजिक कार्य या त्यौहारो, उत्सवों के अवसर पर ध्याणी (बहन) को बुलाने की प्रथा है और फिर सत्कार सहित उसे विदा भी किया जाता है. हम सब भाई बुआ का हमेशा यह ध्यान रखते.

हमारे गांव के बहुत सारे लोग यहां देहरादून में नौकरी करते हैं. हम सबकी एक समिति भी बना रखी है. हर माह समिति की एक बैठक भी होती है, मैं भी उस समिति का सदस्य था. हालांकि समिति ग्रामीण जनों के हित में बहुत काम करती है. कई गांवो मे हेल्थ कैंप, नेत्र चिकित्सा शिविर, विकलांगों की सहायता के शिविर जिसमें विभिन्न उपकरण, नज़र के चश्मे आदि बांटना होता है. मैं समिति के इन सब कार्यों की प्रगति से बहुत खुश रहता. किंतु एक बार समिति से मेरी बुआ को आर्थिक सहायता न प्रदान करने के कारण बहस हो गयी. दरअसल मैंने समिति को सलाह दी थी कि बुआ जिसके आगे पीछे कोई नही है... समिति से उनको कुछ आर्थिक सहायता क्यों नही दी जाती ? किंतु समिति के अधिकांश सदस्य इस पक्ष में सहमत नहीं थे. मैंने यह बात समिति की मासिक बैठक में कई बार उठायी किंतु कोई भी सदस्य पता नहीं क्यों इस बात पर गंभीरता से नही सोचता था. मेरे विचार से समिति के बड़े-बड़े चिकित्सा सहायता शिविर का महंगे-महंगे उपकरण दान करना... और अपने नाक के नीचे ही बुआ को इस तरह उपेक्षित करना बहुत बड़ी विडंबना लगती, लिहाज़ा मैंने उस समिति से अपने को अलग कर दिया.

इधर बहुत वर्षों से बुआ गांव में ही रह रही हैं. मैंने जब अबकी बार गांव जाने का प्रोग्राम बनाया था तो बुआ की बीमारी के बारे मे सुना ही था और मन ही मन यह सोच लिया था कि अबकी बार बुआ को यहां देहरादून लाऊंगा. पत्नी को भी उनकी गंभीर बीमारी के बारे में बताया. वैसे जब मां बीमार रही थी... उनको भी बाद में स्मृति लोप हो गया था और उन दिनो मां की उस बीमारी में पत्नी ने बिस्तर पर ही उनकी कितनी सेवा की थी. कभी कभी तो उसकी उस सेवा भावना के प्रति मेरे मन मे अत्यंत कृतज्ञता का भाव प्रकट हो जाता.

१८ अगस्त १९५९, भटवाड़ा, टिहरी गढ़वाल (उत्तराखंड); कला स्नातक, डिप्लोमा फार्मेसी

सृजन : *दो सौ रचनाएं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं मे प्रकाशित मुख्यतः कहानियां, बाल कहानियां, लघुकथाएं, कविताएं, कादंबिनी, नवनीत, कथाबिंब, कृति ओर, हिमप्रस्थ, हरिगंधा, बालहंस, बालभारती, बालवाटिका, संचेतना, अन्यथा, मसि कागद, युगवाणी, उत्तरा आदि पत्रिकाओं में. आकाशवाणी से रचनाओं का निरंतर प्रसारण. कुछ लघुकथाएं पुरस्कृत.*

संप्रति : *राजकीय सेवा.*

पत्नी ने भी बुआ की बीमारी के बारे में सुना तो तुरंत ही सहमत हो गयी. उसने भी उनकी सेवा टहल करने की इच्छा जाहिर की थी. लेकिन गांव में यहां अब जब बुआ की बहुत दयनीय हालत देख रहा हूं तो हिम्मत जबाव देने लगी है.

बुआ के जीवन की मुसीबतों भरी प्रारंभिक ज़िंदगी के बारे मे अब जब वह अस्वस्थ हो गयी हैं... तो ज़्यादा ही चर्चा सुनायी पड़ने लगी है.

बुआ पहले से ही मुंहफट... स्पष्ट वक्ता थीं. किसी का भी रौब दाब न सहन करने वाली. शादी हुई घर में ही खेती किसानी कम और व्यसनी अधिक फूफा से. बुआ को उनका पीने का व निठल्लापन बिल्कुल पसंद नही आया. उनसे उनकी बुरी आदतो के चलते अपनी स्पष्टवादी मुंहफट स्वभाव वाली छवि के कारण आये दिन बहस हो जाती थी. इसके चलते उन निठल्ले स्वभाव के फूफा का अहम इतना आहत हुआ कि वह कहीं जाकर बताते हैं... साधू बन गये थे. लोग बताते हैं कि बाद में वह भिक्षा मांगने इसी गांव में फिर आये थे. गांव के ही कुछ लड़को ने फूफा को भारी भरकम दाढ़ी में छिपे चेहरे को पहचान लिया था और बाद में तो बुआ ने भी पुष्टि कर दी थी.

रोने धोने वाली एक आम महिला की परंपरावादी छवि बुआ की कभी नहीं रही. वह स्पष्ट वक्ता, कड़क स्वभाव की निर्भीक

निर्णय पर तटस्थ रहने वाली लेकिन स्नेही स्वभाव की महिला हैं. अपने कड़क स्वभाव के कारण हालांकि वह कभी-कभी पछतावा भी करती हैं, ख़ासकर तब जब उन्हें लगता है कि कोई उनकी तेज़ बोलने की आवाज़ के कारण आहत तो नहीं हुआ. गांव में लोगों के साथ उनके खेतों में या अन्य सामाजिक कार्यों में जब कोई उन्हें बुलाता, उसका सहयोग अवश्य करतीं. उन्हें भी लोग स्वाभाविक रूप से हर तरह का सहयोग करने को हमेशा तैयार रहते.

किसी के यहां शादी विवाह है... किसी के यहां बच्चे का कोई जन्म दिन या चूड़ा कर्म संस्कार आदि आयोजन है... कोई बहुत बीमार है... किसी महिला के प्रसव में परेशानी हो रही है... बुआ सभी की सेवा में हाज़िर हो जाती रहीं. बुआ ने शादी के कुछ ही दिनों बाद भले ही अपने स्वभाव के कारण फूफा को अपनी ज़िंदगी से दूर कर दिया था लेकिन सभी गांव वालों को वह अपने इसी स्वभाव के कारण अपना बहुत बड़ा हितैषी भी तो बना गयी थीं और इस तरह सभी गांव वाले उन पर स्नेह भाव रखते.

बुआ जब कभी गांव में शादी विवाह आदि ख़ुशी के मौकों पर शामिल होतीं तो छोटे बच्चों से लेकर युवा व वृद्धों तक सभी से हंसी-मज़ाक ठिठौली करने से कभी परहेज न करती दिखतीं. खुले दिल से सभी से जी भरकर हंसती मुस्कुराती, उसकी ख़ुशी में शामिल होतीं. हमें कभी नहीं लगता कि बुआ किसी शुभ कार्य में शामिल होने में संकोच करती हों. कई गांव की रूढ़ीवादी बूढ़ी महिलाएं उनको विधवा मानकर ऐसे शुभ कार्यों में आगे आने से रोकतीं, तो वे भी उनका डटकर विरोध करतीं. ऐसी रूढ़ीवादी बातें वह बिल्कुल भी सहन न कर पातीं. दूसरी किसी विधवा महिला के लिए भी इस प्रकार की रोक-टोक आदि करने वालों की वह खूब ख़बर लेतीं.

मैं जब भी कभी गांव जाता तो वापस शहर लौटते हुए वे मेरे लिए गांव में पैदा होने वाली कुछ ऐसी सामग्री मेरे बैग में रखना न भूलतीं जो शहर में कम ही मिल पाती है. एक बार बुआ ने एक गाय पाल रखी थी. वापस शहर लौटते हुए मेरे बैग में घी का एक डिब्बा रखते हुए हिदायत भी देने लगीं, "बेटे...ये मैंने ख़ासकर तेरे लिए बनाया है... तेरी कमज़ोर देह देखकर मैं बहुत चिंता करती हूं. बेटा गाय का घी दवाई की तरह होता है... इसको खाते रहना... बाद में जब आऊंगी तो और लेती आऊंगी..." मैं हमेशा उन्हें अपने साथ चलने की ज़िद ही करता... लेकिन वे केवल तभी आतीं जब कोई सार्वजनिक आयोजन... मसलन शादी विवाह इत्यादि जैसे कार्य होते अन्यथा वे बस यूं ही घूमने-घामने के मूड में कभी भी नहीं होतीं. मुझे ऐसे लगता कि ऐसा सामाजिक कार्यों में शामिल होने पर शायद उन्हें कुछ न कुछ काम करने को मिल जाता जिसे वे अपनी उपस्थिति की ज़्यादा सार्थकता समझतीं या शायद उन्हें अपने काम करने से ज़्यादा संतुष्टि मिलती हो. इसीलिए शायद वे ऐसे अवसरों पर ही अधिक आना चाहतीं. अन्य ऐसे अवसरों पर जब कोई काम धाम नहीं रहता तो उनका मन बेचैन हो जाता. उन्हें शायद कुछ न कुछ काम करते रहना ही अच्छा लगता. गांव में भी मैं देखता वे हरदम खेती बाड़ी आदि कुछ न कुछ के कामों में अपने को झोंके रखतीं.

शहर में जब कभी वह हमारे यहां रहतीं और दो घड़ी फुर्सत में होने पर हम उन्हें टी. वी. पर कोई कार्यक्रम आदि देख लेने की ही ज़िद कर लेते तो वे कभी भी दो घड़ी चैन से नहीं बैठ पातीं. कुछ न कुछ करने योग्य काम उन्हें याद आ ही जाता. कभी पत्नी से कहतीं, "ला बहू... गेहूं छान कर धोकर सुखा लेते हैं. अच्छी धूप खिली है आज...दाल ले आ बीन लेते हैं. मैं ज़रा अपने कपड़े ही साफ़ कर लूं. बहू तू मत धो लेना..." आदि-आदि मैं उनकी इस बात पर नाराज़ होकर कई मर्तबे कहता और समझाता, "बुआ... आप दो घड़ी चैन से क्यों नहीं बैठ जातीं. क्या काम रहता है, आपको...दो घड़ी फुर्सत की भी तो होनी चाहिए न... काम तो हमेशा होता ही रहता है." लेकिन बुआ तो पता नहीं किस मिट्टी की बनी थीं, फुर्सत से जैसे उनका कोई रिश्ता ही नहीं... कोई मतलब ही नहीं रहता.

अब बुआ की इस गंभीर बीमारी में मेरा भी फ़र्ज बनता है कि बुआ की बीमारी में मैं उनका समुचित इलाज करवाऊं, देखभाल करूं.

गांव से इस बार आते हुए मैं किसी तरह बुआ को अपने साथ चलने के लिए तैयार कर ही लेता हूं. देहरादून के इस बड़े अस्पताल के अलावा अन्य विशेषज्ञ डॉक्टरों को भी दिखाता हूं. सभी की यही सलाह है - 'यह ज़्यादा उम्र की मानसिक अस्वस्थता का रोग है - दवाइयों से विशेष कुछ नहीं हो सकता... जितनी सेवा घर में ही हो सकती है... करिए !"

बाद में उनको घर पर ही ले आता हूं. पत्नी बहुत ज़्यादा सहनशील व परिश्रमी है. उसे पता है मां की ही जैसी बीमारी बुआ को भी है. मुश्किल से ठीक होने वाली है... बस जितना हो सके सुश्रुषा करनी होगी. पत्नी का सेवा भाव देख कर हतप्रभ हूं. अपनी असहनशील मानसिकता पर सोच कर खुद हैरान हूं. दरअसल पत्नी जब बुआ को बिस्तर पर ही नित्य कर्म आदि करवा रही होती है.. तो एक बार मेरे मन में यह ऊटपटांग विचार भी आ ही जाता है... क्या बुआ को गांव ही छोड़ आऊं ?

राजकीय सेंट मेरीज चिकित्सालय,
मसूरी (उत्तरांचल) - २४८१७९
फोन : ०९४११९०६६५०

कहानी

एक कामरेड की मौत

मुझे अब तक विश्वास नहीं हो रहा है कि कामरेड रमाकांत नहीं रहा. कामरेड की मौत इतनी सस्ती नहीं हो सकती कि थोड़े ही समय मे उपजे पूंजीपति लोग उसे अपना शिकार बना लें. काल के कपाल पर अपनी ज़िंदादिली का ठप्पा लगाने वाला रमाकांत यूं चुपचाप नही मर सकता. वह तो एक बार जिससे मिल लेता, सदियो तक उसके दिलो-दिमाग़ मे ज़िंदा रहने वाला इन्सान था. रमाकांत कोई साधारण आदमी नहीं बल्कि मेरी ज़िंदगी मे आये तमाम लोगों में से सबसे अनूठा और अद्‌भुत इन्सान था. ऐसा इन्सान जिसको मौत ने बार-बार ललकारा, लेकिन हर बार वह मौत से अठखेलियां करता उसी तरह निकल आता था जैसे कोई बच्चा खिलौनों के बीच से.

कामरेड रमाकांत के बारे मे सोचते हुए मुझे अक्सर गीता के दूसरे अध्याय का यह श्लोक याद आ जाता था -

नैनं छिंदंति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।

न चैनं क्लेदयंत्यापो न शोषयति मारुतः ॥

अर्थात इस आत्मा को शस्त्र नहीं काट सकते, इसको आग नहीं जला सकती, इसको जल नहीं गला सकता और वायु नहीं सुखा सकती.

कामरेड जैसे जीवंत व्यक्तित्व को देखकर उसकी तुलना आत्मा से करना हो सकता है, आपको अतिश्योक्ति पूर्ण लगे. लेकिन जो लोग कामरेड रमाकांत को जानते हैं, उन्हें पता है कि वह आत्मा की तरह ही अजर-अमर था. मौत ने कई बार उसे अपना ग्रास बनाना चाहा, लेकिन हर बार उसे असफलता ही हाथ लगी.

अपने छात्र जीवन में ही ख़तरों से खेलने का आदी था रमाकांत ! मेरा सहपाठी ही नहीं, अच्छा दोस्त भी था वह. मेरे और उसके विचारों मे ज़मीन-आसमान का अंतर होने के बावजूद हमारी दोस्ती मे कोई फ़र्क नहीं आया था. रमाकांत स्कूल मास्टर उमाकांत का मंझला बेटा था और मैं उस छोटे से शहर में अपनी विशिष्ट पहचान रखने वाली धींगड़ा फ्लोर मिल के मालिक रामकिशन धींगड़ा का इकलौता पुत्र ! व्यवसायी परिवार के संबद्ध होने के कारण मुझ पर शुरू से ही औद्योगिक घराने की विचारधारा का प्रभाव था. मैं मानता था कि देश में जिस तरह भ्रष्टाचार बढ़ रहा है और लोग सरकारी नौकरियों के लिए लाख-दो लाख रुपये लिये घूम रहे हैं, उसे देखते हुए नौकरियों से देश और समाज का भला होने वाला नहीं है. देश की भावी पीढ़ी को स्वावलंबी और आत्मनिर्भर बनाने के लिए हमें औद्योगिक राह ही अपनानी पड़ेगी. इस देश को ग़रीबी और ज़लालत भरी ज़िंदगी से निकालने का एक ही उपाय है और वह है - औद्योगिक क्रांति !

रमाकांत मेरे इस विचार से कुछ हद तक तो सहमत था लेकिन उद्योगों से होने वाले लाभांश के वितरण विषयक विचारों से हमारा हमेशा मतभेद रहा. उस पर मार्क्स का प्रभाव था. रमाकांत की मान्यता थी कि उद्योगों की रीढ़ उसके श्रमिक हैं और उन्हें सकल लाभ का बराबर हिस्सा मिलना चाहिए. उद्योग सहकारिता के आधार पर चलें और समानता की नीति अपनाकर सबको बराबर लाभ दिया जाये. अगर मिल में मज़दूर काम नहीं करें तो मालिकों के भूखे मरने की नौबत आ जाये. इसके विपरीत भारत में मज़दूरों की हालत बेहद ख़राब है. उन्हें भरपेट भोजन तक नहीं मिलता. मिल मालिक टैक्स बचाकर सरकार को तो चूना लगाते ही हैं, मजदूरों का हक़ भी मारते हैं. ऐसे माहौल में मजदूरों को संगठित होकर अपने हक़ों की लड़ाई लड़ने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए. जब तक इस देश का मज़दूर नहीं जागेगा, तब तक भारत की न तो तकदीर बदल सकती है और न ही तस्वीर !

कृष्ण कुमार 'आशु'

इसके विपरीत मैं मानता था कि उद्योग स्थापित करने, उसकी व्यवस्था और संचालन में जितना मानसिक श्रम मिल मालिकों-संचालकों को करना पड़ता है, वह किसी भी दृष्टि से श्रमिकों के शारीरिक श्रम से कम नहीं होता. फिर सारी पूंजी, सारा जोखिम भी मालिक का होता है. मज़दूर का क्या है, अगर मिल बंद हो गयी तो उसे दूसरी जगह काम मिल जायेगा, लेकिन मालिक का क्या होगा ?

विचारधारा मे मतभेद होने के बावजूद मैं रमाकांत को पसंद करता था. वह यारो का यार था. कॉलेज में कोई भी गतिविधि हो, वह सबसे आगे रहता था. वार्षिकोत्सव पर वह भगतसिंह के जीवन पर आधारित कोई न कोई एकांकी ज़रूर प्रस्तुत करता. सांस्कृतिक गतिविधियों के अलावा छात्र आंदोलनों

मे भी वह सक्रिय था. मुझे याद है जब देश भर मे आरक्षण विरोधी दंगे भड़के थे तो वह उस आंदोलन में सबसे आगे था. हमारे शहर मे पहली बार किसी आंदोलन ने हिंसक रूप धारण किया था और पुलिस को आंदोलनकारियों पर अश्रु गैस के गोले फेकने पड़े थे. उस समय हम लोग हैरान थे कि रमाकांत गैस का गोला फेकते ही उसके धुएं मे घुस जाता और अगले ही पल उस गोले की चिंगारी से सिगरेट सुलगाकर शान से बाहर आ जाता. कई बार तो उसने पुलिस के फेके हुए गोले वापस उसी पर फेक दिये थे. एक बार कलक्ट्रेट के बाहर प्रदर्शन के दौरान जब पुलिस ने अश्रु गैस का गोला फेंका तो रमाकांत ने उसे उठाकर वापस फेक दिया था. पूरी कलक्ट्रेट मे हड़कंप मच गया था. चारो तरफ चीख-पुकार थी. लोग अपनी आंखे मलते हुए पानी की टंकियों की तरफ भाग रहे थे. क्या अधिकारी और क्या कर्मचारी सबके सब अपनी आंखों मे जलन महसूस कर रहे थे और पानी के छींटे मारकर उस जलन को कम करने के प्रयास में जुटे थे. लगभग दो घंटे तक कलक्ट्रेट के उच्चाधिकारियों और कर्मचारियों ने इस जलन को झेला था. इसके बाद रमाकांत पुलिस और प्रशासन की आंख की किरकिरी बन गया. बदला लेने के लिए पुलिस ने विशेष रूप से रमाकांत को निशाना बनाया था और उसे बड़ी निर्दयता से पीटा. उन दिनों पूरा एक महीना उसे सरकारी अस्पताल मे गुज़ारना पड़ा था. लोग मान रहे थे कि अब रमाकांत नही बचेगा लेकिन मौत उससे जीत नहीं पायी. एक महीने के बाद वह हंसता-मुस्कुराता हुआ आ गया था और दोस्तों के बीच फिर उसी ज़िंदादिली के साथ अपने काम में मशगूल हो गया.

मौत तो उस समय भी रमाकांत से कन्नी काट गयी थी जब कश्मीर यात्रा के दौरान उग्रवादियों ने उसे पकड़ लिया था और वह उन्हें चकमा देकर भाग आया था. उसका अकेले कश्मीर जाने का निर्णय भी कम हिम्मत वाला काम नहीं था, वह भी मोटरसाइकिल पर. हिंदू-मुस्लिम एकता के नारे के साथ कश्मीर को भारत का अभिन्न अंग बताते हुए सद्भावना का संदेश लेकर आतंक के साये मे जी रहे लोगों के बीच जाने का साहस अब तक कोई नहीं कर पाया था. अलबत्ता यात्रा मे आर्थिक सहयोग देने को सभी तैयार थे. आखिर अकेला ही चल पड़ा था रमाकांत मिशन कश्मीर पर। लगभग दो महीने की इस यात्रा में कई बार ऊंची पहाड़ियों, गहरी खाइयों और बर्फीले तूफानों के बीच मौत से उसका सामना हुआ था लेकिन हर बार मौत उसके रास्ते से हट जाती और वह अपनी मस्ती में गुनगुनाता हुआ आगे बढ़ जाता.

इसी गुनगुनाहट के बीच एक दिन जब वह डोडा क्षेत्र के एक गांव से गुज़र रहा था तो उसे लश्कर-ए-तोयबा के आतंककारियों ने पकड़ लिया. वे उसे गुप्तचर एजेंसी का आदमी समझ रहे थे.

कृष्णकुमार 'आशु'

१२ जनवरी १९६८,
एम. ए. (हिंदी)

प्रकाशन : *जनसत्ता, नवभारत टाइम्स, हिंदुस्तान, राजस्थान पत्रिका, संबोधन, शेष, युद्धरत आम आदमी, मधुमती सहित देश की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में रचनाओं का प्रकाशन.*

प्रकाशित पुस्तकें : *भारत माता का दर्द (बाल कथा संग्रह), समय का प्रहरी (बाल कथा संग्रह), हाशिये पर आदमी (कहानी संग्रह), नाक पर चिंतन (व्यंग्य संग्रह).*

प्रसारण : *जयपुर दूरदर्शन व आकाशवाणी के सूरतगढ़ केंद्र से नियमित प्रसारण.*

पुरस्कार : *स्काउटिंग में सेवाएं देने पर राष्ट्रपति अवार्ड १९९१, प्रधानमंत्री शील्ड १९८७, 'नाक पर चिंतन' पर राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर का डॉ. कन्हैया लाल 'सहल' पुरस्कार, कहानी 'आत्म समर्पण' पर राज्य स्तरीय, राजेंद्र सक्सेना स्मृति पुरस्कार, साहित्यिक सेवाओं के लिए जिला प्रशासन द्वारा पुरस्कृत.*

संप्रति : *राजस्थान पत्रिका श्रीगंगानगर के संपादकीय विभाग में कार्यरत.*

पूछताछ में जब रमाकांत ने उन्हें अपनी यात्रा और उद्देश्य के बारे मे बताया तो वे और भड़क गये. उन्होंने उसकी रिहाई के बदले सरकार से अपने कुछ साथियों को छुड़वाने की योजना बनायी थी. लेकिन रमाकांत ने उनके मनसूबों पर पानी फेर दिया था. वे कुछ कर पाते इससे पहले ही एक रात वह उन दुर्गम पहाड़ी रास्तों में भाग निकला था. पता नहीं रमाकांत की किस्मत अच्छी थी या आतंककारी अनाड़ी थे, पर मौत के पंजे से सुरक्षित निकल आया था रमाकांत. जब उसने वापस लौटकर अपनी आपबीती सुनायी तो साथियों के रोंगटे खड़े हो गये थे.

इसके बाद भी कम से कम एक दर्जन बार मौत रमाकांत के करीब से गुज़री, लेकिन एक बार भी वह उसे छू नहीं पायी थी. कश्मीर यात्रा के बाद रमाकांत एक मज़दूर संगठन का सक्रिय सदस्य बन गया था. मज़दूरों का हक दिलाने के लिए

वह मालिकों से टकराने लगा. जाने कितनी बार उसने पुलिस की लाठियां खायीं और कितने दिन हवालात में बंद रहा. कपड़ा मिल का मज़दूर आंदोलन हो या महंगाई के ख़िलाफ श्रमिकों का प्रदर्शन, सिंचाई पानी की कमी के चलते किसानों की सरकार से लड़ाई हो या फीस वृद्धि के ख़िलाफ छात्रों का आंदोलन ! हर जगह आगे रहता था रमाकांत. लोग अब उसे नाम से नहीं, कामरेड कहकर पुकारने लगे थे.

रमाकांत के कामरेड की मौत तो तब भी नहीं हुई थी जब उसने अपनी मरती हुई मां का दिल रखने के लिए पैंतीस वर्ष की उम्र में विवाह के बाद आयी ज़िम्मेदारियों के चलते आंदोलनों में उसकी भागीदारी कम से कम होती चली गयी थी. हुआ यह था कि उसकी घर में ग़ैर हाज़िरी और पुलिस के साथ आंख मिचौली के चलते पत्नी परेशान रहने लगी. दो बच्चे हो गये थे मगर रमाकांत की आदतों में कोई सुधार नहीं हुआ. जबकि रमाकांत के बच्चे भी उसे 'कामरेड' कह कर पुकारते थे.

कोई पूछता यह कामरेड क्या होता है तो वे बड़ी मासूमियत से जवाब देते - कामरेड वह होता है जो कई-कई दिन तक अपने घर नहीं आता !

एक दिन जब कामरेड रमाकांत के दोनों बच्चों को फ़ीस के अभाव में अध्यापक ने स्कूल से वापस भेजा, उस समय रमाकांत घर पर ही था. उसने स्कूल व्यवस्थापक को गाली दी और उससे झगड़ा करने के लिए जैसे ही निकलने लगा, पत्नी ने उसका रास्ता रोक लिया और जीवन में पहली बार स्कूल व्यवस्थापक को दी गयी रमाकांत की गाली उसे वापस लौटाते हुए चिल्लाई थी - जब घर में दाने नहीं होंगे तो क्या बाहर वाले हमें खिलाने आयेंगे ? आज बच्चों को स्कूल से निकाला गया है. कल इनके पालन-पोषण के लिए मुझे खुद किसी के पास जाना पड़ेगा. तब भी तुम इसी तरह गाली देकर काम चला लेना! गृहस्थी की ज़िम्मेवारी समझने की न तुममें समझ है और न कुव्वत !

ज़िंदगी में पहली बार रमाकांत को अपनी गलती का एहसास हुआ. उसे लगा कि दुनिया सिर्फ़ देश और समाज ही नहीं है. उसमें घर का भी कुछ महत्त्व होता है. ...और उसने उसी दिन से ख़ुद को घर की ज़िम्मेदारियों में ऐसा ढाला कि उसकी पत्नी को ऐसी बात कहने का मौका फिर कभी नहीं मिला. अब वह - अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम...! वाला रमाकांत नहीं रहा था बल्कि उसने एक मिल में मज़दूरी करना स्वीकार कर लिया था. और मज़दूरों के छोटे-मोटे हितों की अवहेलना करना भी सीख गया था. ख़ुद को एक सफल गृहस्थ के रूप में साबित करने के लिए मिल मालिक के आगे-पीछे घूमना भी उसकी विवशता हो गया था. लोग कहने लगे कि रमाकांत के अंदर का कामरेड मर गया है.

लोग भले ही कहते हों लेकिन मैं जानता था कि ऐसा हो ही नहीं सकता. वह पत्नी का ताना सुनकर कालीदास तो नहीं बन पाया लेकिन एक अच्छे पति और ज़िम्मेदार पिता की भूमिका निभाने लगा था. कई बार मिल मालिक के तुगलकी आदेश भी उसने मन मसोसकर स्वीकार किये लेकिन मज़दूरों के लिए कुछ करने का ज़ज्बा उसके भीतर ख़त्म नहीं हुआ था. जब भी उसे मौक़ा मिलता वह उनके दुख-दर्द में काम आता. उनके हक़ के लिए पहले मालिकों को समझाता. बात बन जाती तो ठीक वरना अपनी पुरानी नीति पर आने से भी नहीं चूकता. वह भूल जाता था कि उसकी बीवी ने उसे कोई रास्ता दिखाया था. उसके दो बच्चे हैं. और उनका भविष्य है. यही कारण था कि मज़दूरों के मन से कभी रमाकांत का आदर कम नहीं हुआ. ख़ुद गृहस्थ होने के कारण मज़दूर उसकी पीड़ा और ज़िम्मेदारी को समझते थे. अपने करीबी मित्रों से बातचीत में रमाकांत अक्सर कहता भी, ...'ये साली गृहस्थी आदमी को हिजड़ा बना देती है. पत्नी रात को चांद की तरह लगती है और सुबह आग का गोला बन जाती है. उसकी दो ही ज़रूरतें पूरी करने में आदमी अपनी सारी ज़िंदगी बर्बाद कर देता है. पहली, रोटी-कपड़े के लिए पर्याप्त धन और दूसरी रात को बिस्तर पर कबड्डी खेलने के लिए साथी. दूसरी ज़रूरत पूरी करने में कोई परेशानी नहीं, लेकिन पहली के चक्कर में आदमी को वह सब कुछ करना पड़ता है, जो वह नहीं चाहता. मन मारकर भी उसे ख़ुद को ज़िंदा रखना पड़ता है.'

और इसी तरह जीवन व्यतीत करते एक दिन जब उसकी पत्नी गृहस्थी की ज़रूरतों के साथ बनारसी साड़ी ख़रीदने का मानस बना रही थी, तभी किसी मज़दूर की निर्मम पिटाई के विरोध में वह कुछ मज़दूरों को लेकर जुगनू टेक्सटाइल्स मिल्स में गया तथा मिल मालिकों के बुलाये गुंडों के हाथ चढ़ गया था. उन्होंने लाठियों से पीट-पीट कर रमाकांत की हत्या कर दी थी. उसकी पत्नी फिर कभी अपने मन में बनारसी साड़ी का ख़याल तक नहीं ला सकी.

लेकिन उस दिन भी रमाकांत मरा नहीं था. कामरेड रमाकांत कभी मर नहीं सकता. लाठियों-गंड़ासियों की तो बात ही क्या, जिसके बारे में साक्षात् भगवान श्रीकृष्ण की यह वाणी मेरे मन में गूंजा करती थी - नैनं छिंदंति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ...उसे भला कौन मार सकता था. रमाकांत तो सदैव था और सदैव रहेगा.

रमाकांत के हत्यारों को पकड़ने के लिए जेल भर में आंदोलन चला था. मज़दूरों ने कई दिन तक हड़ताल, चक्का जाम और तोड़फोड़ की. आंदोलन के हिंसक होने पर सरकार को विशेष जांच टीम का गठन करना पड़ा. पुलिस ने जुगनू टेक्सटाइल्स मिल्स के साझेदारों व उन गुंडों को गिरफ़्तार किया तब कहीं जाकर आंदोलन शांत हुआ.

कविता

जीवन-चिंगारी

सुरेश उजाला

पर्वत-पाषाण
पत्थर-चट्टान
शिला
सभी का
समभाव है - यहां,
कठोर-अचल
अडिग-मजबूत
अर्थ है - इनका,
हिल नहीं पाते
मगर टूट जाते हैं
जोर की आवाज़ से,
लेकिन - शिलालेख
पाषाण होकर भी
बोलते हैं - जीवन गाथा
और
खोलते हैं - जीवन-गुत्थी,
इसलिए
जन-जीवन से जुड़ा है -
पाषाण
जिसका साक्षी है
पाषाण-युग,
जो मौजूद है
आज भी
हम और हमारे - साथ.
पत्थरों का घर
पत्थरों का शहर
पत्थर दिल इंसान
पत्थर ही पत्थर हैं
मौजूद
हर जगह जीवन में,
फिर भी...
पाषाण सा जीवन
जीते हैं - हम
कलेजे पर रखकर पत्थर
चट्टान की तरह
खड़े हो जाते हैं - अक्सर
और
बन जाते हैं - मील का पत्थर,
तब कहीं जाकर
आपसी टकराव में
पैदा होती है
बेजान पत्थरों के बीच
जीवन-चिंगारी.

१०८, तकरोही, पं. दीनदयाल पुरम् मार्ग,
इंदिरा नगर, लखनऊ २२६०१६

इसी दौरान कामरेड रमाकांत की प्रतिमा लगाने का निर्णय हुआ और उसके साथी चंदा इकट्ठा करने में जुट गये. हर गांव, हर ढाणी के लोगों ने अपने महबूब नेता की प्रतिमा स्थापित करने के लिए अपनी क्षमता से बढ़कर आर्थिक सहयोग दिया. दिलचस्प बात यह थी कि कई मिल मालिकों और धनाढ्य परिवारों के लोग भी प्रतिमा स्थापना में आर्थिक सहयोग के लिए आगे आये. कुछ ही दिनों में प्रतिमा बनकर तैयार हो गयी तो शहर के प्रमुख चौराहे पर उसे स्थापित किया गया. प्रतिमा का अनावरण एक राष्ट्रीय स्तर के नेता के हाथों करवाया गया. बहुत बड़ा जलसा हुआ. हज़ारों मज़दूर इसमें शामिल हुए और रमाकांत की शहादत को नमन् करते हुए उन्हें श्रद्धांजलि दी गयी.

अगले दिन के अखबार इस जलसे की खबरों और फोटो से रंगे हुए थे. चारों तरफ़ इसी के चर्चे थे. रमाकांत की शहादत, उसके बलिदान और उसकी अमरता के रंग में लोग पूरी तरह डूब गये थे.

❑

यह जलसा होने के डेढ़ वर्ष बाद जबकि कामरेड रमाकांत की प्रतिमा धूल से सनी खड़ी थी, जाने कितने पक्षियों ने बीट कर-करके उसको बदरंग कर दिया था. उसके स्मारक स्थल का चबूतरा भी धूल, मिट्टी, गोबर और बीटों से भरकर अपनी आभा खो चुका था. भारतीय मज़दूर की तरह उपेक्षित उसकी प्रतिमा शहर की जनता को सूनी-सूनी आंखों से देख रही थी. उस दिन भी लोगों के घर अखबार पहुंचा था लेकिन अंदर के पेज पर सिंगल कॉलम में छपी ख़बर पर किसी ने ग़ौर ही नहीं किया जिसमें लिखा था - कामरेड रमाकांत हत्याकांड के सभी अभियुक्त बरी ! मामले के सभी चश्मदीद गवाह अपने बयानों से मुकर गये थे.

... और सच कहता हूं, उस दिन मुझे गीता में लिखी श्रीकृष्ण की वाणी झूठ प्रतीत हुई थी. उस दिन पहली बार मुझे लगा था कि सचमुच कामरेड रमाकांत की मौत हो गयी है.

'अक्षर', १२८ मुंशी प्रेमचंद कॉलोनी,
माइक्रोवेव टॉवर के पास, पुरानी आबादी,
श्रीगंगानगर (राजस्थान) - ३३५००१
फोन : ९४१४६५८२१०

कहानी

रद्दी

(यह कहानी समर्पित है उन मज़दूरों को, जो कुप्रबंधन व बाज़ारवाद के दबाव से बंद हो गयी मिलों के कारण अचानक रद्दी मे बदल गये. जिन्होंने अपने जीवन की सारी ऊर्जा इन कारखानों मे झोंक दी... और ज़िंदगी के अंतिम पड़ाव पर छो से देख रहे हैं उन बंद मिलों के दरवाज़ो की तरफ... उन्हें अभी भी आशा है - मिलें फिर धुआं उगलेंगी...)

लोटा पाड़े बेंच पर बैठे सुरती मलने मे मगन थे. जानकी मिस्त्री मशीन का चक्का खोल रहे थे. चक्का ससुरा था कि खुलने का नाम ही नही ले रहा था. जानकी मिस्त्री का काला चेहरा पसीने से लथपथ होकर और आबनूसी हो गया था.

"का हो भइया जरको दम नही रहल का. आधा घंटा से चक्का पकड़ कर हाफ रहे हो. भउजइयो अपने करम को रो रही होगी." लोटा पाड़े खिलखिला कर हंस दिये. और जानकी उनके मज़ाक की गहराई समझ कर मुस्कराये.

दोनों की बहुत पुरानी दोस्ती थी. इस मिल मे साथ-साथ आये थे. काफ़ी दिन साथ-साथ रहे भी. जानकी हेल्पर से मिस्त्री बन गये तो पाड़े जी को भी कारीगर बना दिया. वैसे जानकी की का औकात कि किसी को कुछ बना दें. वो तो एक मशीन खराब थी, जेम्स साहेब बोले - "जानकी तुम तो कारीगर आदमी हो और तुम्हारे रहते मशीन बिगड़ा पड़ा है. हमको अच्छा नही लगता है."

जानकी भी तब जोसिया गये और एक-एक पुर्जा खोल कर मशीन को ठीक कर के ही दम लिया. बहुत ख़ुश हुआ था साहेब. पीठ ठोंक कर बोला, "हम तुमसे बहोत ख़ुश हैं. हम तुम्हारे को कुछ देना मांगता है. बोलो क्या मांगता है."

जानकी मिस्त्री भी हाथ जोड़ कर बोले, "हजूर इ हमरे गांव जेवार के बाभन देवता हैं. काफ़ी दिन से हेल्परी कर रहे हैं. बढ़िया काम सीख गये हैं. आप किरपा कर देते हजूर त..."

और बिना किसी ना नुकर के जेम्स साहेब लोटा पाड़े को कारीगर बना दिये.

ये बात जानकी ने कभी अपने मुंह से नहीं कहा होगा. लेकिन पाड़े महाराज को इस किस्से को सुनाने मे कोई गुरेज़ नही था. जानकी कई बार टोक भी चुके थे, "बस महाराज, रहे भी दिहल जाय. उ जमाना ही दुसर था. आदमिये कहां मिलते थे. अब तो अपने लरिका बच्चा को भर्ती कराने की सोचिए तो कोई घास नहीं डालेगा. हर काम में बिचौलिया हो गया है. केतना तो साला यूनियन बन गया है. लाल झंडा, पीला झंडा, नीला झंडा... जिसको काम नही करना है कवनो रंग का झंडा पकड़ लो... आ सबसे मजेदार बात त इ है कि साहबो लोग भी इन्हीं की सुनता है. नही तो गेट पर खड़ा हो कर 'ले कर रहेंगे... दे कर रहेंगे...' चिल्लायेंगे."

लोटा पाड़े पचपन पार कर चुके थे. जानकी उनसे एकाध साल बड़े होंगे. दोनों के परिवेश मे ज़मीन आसमान का अंतर था. लोटा पाड़े शुद्ध शाकाहारी, दोनों समय पूजा-पाठ करने वाले जबकि जानकी मास-मछरी वाले... मिली तो सो ग्राम पी भी लें.

लोटा पाड़े का चरित्र भी बेजोड़ था. पांच फुटिया गोल मटोल भी... रंग पीली गोराई वाला... सिर के आगे के बाल उम्र के इस पड़ाव तक पहुंचते-पहुंचते साथ छोड़ चुके थे. लगातार सुर्ती के सेवन ने दांतों को अनुशासनहीन बना दिया था, वे गंदे व कमज़ोर हो चुके थे. ऊपर व नीचे के दो-दो दांत भाग चुके थे. शेष दांतों की विश्वसनीयता पर भी संदेह था... न जाने कब साथ छोड़ दें. पाड़े जी के पास एक तांबे का लोटा था. वह लोटा क्या था उनके पूर्वजों के सम्मान का प्रतीक था. यह लोटा गांव से चलते समय अपने साथ लाये थे. कभी वह बहुत भारी रहा होगा लेकिन आज समय की मार ने उसे बेढंगा बना दिया है. मिल मे चाय टाइम के समय पाड़े का लोटा चाय वाले के सामने सबसे पहले आ जाता. पूरे चार कप चाय लेते थे पाड़े महाराज. जब कभी बहुरिया के हाथ के खाने से उबिया जाते तो इसी लोटवे मे दो मुट्ठी चावल डाल कर डभका लेते. कोई टोकता, "का हो पाड़े जी आज बहुरिया से फिर झगड़ आये हैं का..."

गोविंद उपाध्याय

दरअसल लोटा पाड़े को बवासीर की शिकायत थी और बहुरिया को थोड़ा चट्कार भोजन पसंद था. जब बीमारी उभरती तो लोटा ही एकमात्र सहारा होता... चावल डभकाओ, माड़ पसाओ... और नमक डाल कर सटक लो... और इसी बात से जानकी को चिढ़ थी, "का महराज बहुरिया से कह दे त का उ बिना तेल मिर्चा के नही बना देगी. उ का कहते हैं अपनी तरफ 'मड़हा मरद चउरही जोह, ओकरे घरे बरक्कत न होय' (माड़-भात खाने वाले पुरुष और कच्चा चावल खाने वाली स्त्री के घर मे कभी प्रगति नही होती है.)

लोटा पाड़े फिस्स से हंस देते, "हा जानकी भइया तोहार कहल सही है, मगर बहुरिया मनबे नही करती है. एकाध दिन सही बनायेगी फिर उहे राग माला..."

लोटा पाड़े बड़े शान से इस लोटे के बारे मे बताते, "जउरा के महराज के यहा जजमानी मे मिला था यह लोटा. राजा साहेब को बुढ़ौती मे लरिका हुआ. रानी साहिबा भागवत भाखी थी. लोटा मुरादाबाद से सवा-सवा किलो का पेशल आडर दे कर बनवाया गया था. पूर्ण आहुति के बाद एक पांति मे बइठा कर पाव लागि-लागि कर जेवार के इकइस बड़का बाभान को सर-समान के साथ इ लोटा भी दान मे दिये थे."

यह लोटा ही उनकी पहचान बन गया था. तभी तो गोरखपुर से कानपुर आते-आते लल्लन पाड़े 'लोटा पाड़े' हो गये.

लोटा पाड़े बाल ब्रह्मचारी थे. चौदह वर्ष की उम्र मे घर छोड़ दिये थे. छोड़ते नही तो क्या करते. एक-एक दाने को तो मोहताज था परिवार. पूरी पूस की राते, कन (शकरकंद) खा कर... और चट्टी (बोरा) ओढ़ कर गोइठा के आग के सहारे कट गयी. फागुन आया तो सोचा कि दलहनव तेलहन से घर को कुछ राहत मिलेगी... तो कुछ मौसम की मार अ कुछ बड़का भइया की नशा खोरी... एक्को दाना घर नही पहुंचा. लल्लन पाड़े के सब्र का प्याला भर गया, "का फ़ायदा है अइसी खेती-बाड़ी का. चुल्हा भाड़ मे जाय साला... जब मजूरी ही करना है तो का देश का परदेश..." और पहिली ट्रेन पकड़ कर आ गये शहर मे. पांच साल तक क्या-क्या नही किया. गारा-माटी ढोया... भइसा गाड़ी खीचा... तभी मिले थे जानकी. गांव जवार का होने से जल्दी ही घनिष्ठता भी हो गयी. एक बार पाड़ेजी बीमार पड़ गये. अब इस परदेश मे कौन था जो उनकी देख-भाल करता. जानकी अपने ठीहे पर लाये. खूब सेवा किये. बस उसी दिन से जाति भेद भी मिट गया. जानकी को वो भइया कहते और जानकी उनको महराजजी... भले ही पूरा मिल उन्हे लोटा पाड़े बोलता हो.

लोटा उनके जीवन मे उतना ही अहम था जितना की जनेऊ. गंगा मेला के दौरान तीन रुपया मे एक दर्जन जनेऊ ख़रीद लाते. साल भर की फुरसत. जनेऊ क्या था मोटा धागा. पाड़े जी संदूकची की चाबी उसमे लटकी रहती. मारकीन की गंजी और मोटी धोती जो घुटने से थोड़ा ऊपर ही रहती, यही उनका सदाबहार परिधान था. सर्दी मे ज़रूर एक लोई ओढ़ लेते. लेबर कॉलोनी मे जब जानकी ने अपने लिए क्वाटर लिया तो पास मे ही लोटा पाड़े के लिए भी व्यवस्था कर दिया. जब पाड़े बाबा का जांगर थकने लगा तो गांव से बड़े भाई का एक बेटा पास आकर रहने लगा. कुछ दिन बाद पतोहू भी आ गयी. अब दो रोटी सकून की मिलने लगी थी. नही तो लोटा मे चावल और आलू उबाल कर खाते पूरी ज़िंदगी निकल गयी थी. वैसे भी भाई-भतीजे को डर

१५ अगस्त १९६०: कानपुर

लेखन : १९८० से लेखन कर्म का प्रारंभ. सौ से ज़्यादा रचनाएं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं मे प्रकाशित. कुछ कहानियो का प्रादेशिक भाषाओ मे अनुवाद. कहानी संग्रह 'पंख हीन' शीघ्र प्रकाश्य.

संप्रति : रक्षा प्रतिष्ठान मे पिछले बाइस वर्षो से अनुरेखक.

था कि पाड़े को मिलने वाला धन बिना वारिस के कही डूब न जाये. भतीजा किसी शो रूम मे सेल्स मैन का काम करता था. उसकी एक प्यारी सी बच्ची थी. बहुत प्यारी-प्यारी बाते करती- "बाबा मेले लिए पी-पी वाला जूता किन दीजिए... बोलने वाली गुलिया ला दीजिए..." अढ़ाई साल की हो गयी थी. लोटा पाड़े का फुरसत का समय बड़े आनंद से कट जाता.

❒

आखिर जानकी मिस्त्री ने मशीन का चक्का खोल ही दिया. चहेरे पर थोड़ा सकून आया. अभी बहुत काम पड़ा था. मशीने पुरानी, लोग पुराने. खुचुर-पुचर काम चल रहा था. बस दो ही ऐसा विभाग बचा था जहां पुरानी मशीने थी और जानकी तथा लल्लन जैसे पुराने लोग.

अब भर्ती भी कहां हो रही थी. आदमी का सारा काम तो मशीने ही कर लेती है. मशीने ऑटोमेटिक आ रही थी. उसमे दूसरा हिसाब-किताब था. सब मशीन मे कंप्यूटर लगा था. नये लड़के आते. फटाफट बटन दबाते, प्रोगराम बन जाता. मशीन क्या जादू का पिटारा. तीन चौथाई काम खुद ही कर लेती. खाली मटेरियल पकड़वाना पड़ता. सामान तो जादू की तरह खुद-ब-खुद बन कर बाहर आ जाता. उसकी मरम्मत तो दूर, उसको छूने में ही जानकी की रूह कांपती. वैसे भी उसकी मरम्मत के लिए दूसरी कंपनी का आदमी आता था.

जानकी थे जाति के कहांर. लेकिन अब जाति सिर्फ़ कहने को रह गयी थी. दो लड़का और दो लड़की. यानि कि मैच बराबर पर छूटा था. जानकी की मेहरारू कभी रही होगी कटीली.

अब बुढ़ापा और गठिया ने उन्हे काफी लाचार कर दिया था. एक तो भारी शरीर ऊपर से इ बीमारी... इसी कारण बड़का को जल्दी बियहि दिये कि बुढ़िया को थोड़ा आराम मिलेगा. लेकिन पतोहू एक नंबर की नंगिन मिल गयी. उसका एक पांव हमेशा मायके में ही रहता. ऊपर से दो बच्चे भी हो गये थे. वो दोनों दादी की छाती पर ही सवार रहते. बड़ा लड़का किसी दवा कंपनी का प्रतिनिधि था और काम से अक्सर बाहर ही रहता.

जब काम का बोझ बढ़ जाता... बुढ़िया बहू पर भुनभुनाती, ..."बुजरी छिनार है, ज़रूर कवनो यार है उसका मायके में, शादी के पांच बरिस बाद भी उहे दिखाई देता है. कवनो न कवनो बहाना बना कर भागने की तैयारी रहती. अरे हमरे घर भी तो बेटी है... दू-दू बरस हो जाता है... बेटी का सकल देखने को अंखिया तरस जाती हैं."

जानकी इन सबसे फ्री थे. बड़ी वाली लड़की की शादी कर चुके थे. छोटा लड़का सिविल से डिप्लोमा कर रहा था और छुटकी इंटर की तैयारी में लगी थी. सब कुछ ठीके ठाक चल रहा था. नौकरी में भी पहले काफ़ी सम्मान मिलता था. लेकिन जब से आधुनिकीकरण का सिलसिला चला है. इधर कवनो साहेब झांकने भी नही आता. पहिले आठ घंटा खटने के बाद भी रोक लिया जाता था. अब तो कोई पुछतरे नहीं है. सब साला कारीगर लोग दिन भर बकचोदी करता है. दुसरे के मेहरारू के बारे में गंदा-संदा बात करेगा. पोलिटिक्स के बारे में ए बी सी डी... नहीं मालूम लेकिन नेता लोगन का भ्रष्टाचार पर ऐसा भाषण झाड़ेगा जइसे देस का सारा बोझा यही ससुर लोग ढो रहा है. हां, पुरानी मशीन बार-बार मरम्मत मांगता है...और अब उनके बूढ़े सरीर में जान कहां बचा है. एक ठे अभी काम करना चालू नहीं किया के दूसरा ख़राब... दूसरा सही हुआ तो पहिला ख़राब... और जानकी बेजार हो गये हैं इन मशीनों से... बाबा आदम के ज़माने की तो हैं ...कवनो का पुर्जा नहीं मिलता है बाज़ार में. साला जोगाड़ से काम कब तक करेगा. कोई कह रहा था ये भी सब जल्द ही खोद कर फेंक दिया जायेगा. और इसे भी ऑटोमेटिक प्लांट कर दिया जायेगा. तब वो का करेंगे. करेंगे क्या... घुंइया छीलेंगे... कितना दिन बचा है तीन साल...

इधर बड़ा हल्ला हो रहा है... मिल दूसरा कवनो सेठ ख़रीद रहा है. बहुत घाटा हो गया है. यदि सेठ ने मिल नहीं लिया तो समझो कि मिल बंद. मिल गेट पर रोज़ एक यूनियन अपना झंडा-डंडा लेकर मालिक लोगों को गरिआता, "हमने अपना खून पसीने से सींचा है इस मिल को... और मालिक इसे दूसरों के हाथों बेच कर हमारे बीबी-बच्चों के पेट पर लात मार रहा है... हमारे भविष्य के साथ खिलवाड़ कर रहा है. हम ये बेइंसाफ़ी नही बर्दाश्त करेंगे. हम इनकी ईंट से ईंट बजा देंगे." खलोटा पाड़े भी जोशिया जाते, "जो हमसे टकरायेगा, चूर चूर हो जायेगा."

"कुछ नहीं होगा महाराज... हमी लोगों का भुरकुस निकल जायेगा. सरवा व्यवस्था से कोई जीता है आजतक... काम कोई करने नही चाहता है. मिल हराम खोरों का गढ़ बनता जा रहा है. अब पूरा का पूरा जनम पतरी... जाति... जनम का तारिख... भरती का तारिख... सब कुछ कंप्युटर के बक्सा में डाल दिया गया है. काम करो न करो लाइन से परमोशन मिलेगा. का गधा... का घोड़ा... उ का कहता है रमरतिया - 'बने रहो लल्लु, तनख्वाह लो फुल.' जब यही सोच रह गयी है हम सभी की... फिर मालिक से किस बात की शिकायत... आख़िर केतना दिन पोसे... अपना बोझा दोसरे के कपारे पर डाल कर अपना जान छोड़ायेगा... दूसरा सेठ आयेगा त डंडा डाल कर काम लेगा... जो नहीं झेल पायेगा ओकरे पिछाड़े लात मार कर बाहर कर देगा. कम से कम काम वाला लोगन का इज़्ज़त तो होगा ना... महराज जी आप त मेहनत वाला लोगन के लाइन के आदमी हो... आप काहे इन चुतियापा में पड़े हो. वइसे भी अब ज़माना बदल गया है. एतना ज़्यादा बदल गया है कि सरकार का बुता है जो मालिक को उधार पइसा दे कर हमको पोस रही है." जानकी मिस्त्री पाड़े महाराज को समझाने का प्रयास करते.

लोटा पाड़े भी कोई बेवकूफ़ नहीं थे, "का जानकी भइया आपो किस दुनिया में हैं. साला बड़का पढ़ाई वाला तो घांस छील रहा है. हम लोगों को कौन पूछेगा. इ सरवा झंडा है तो साहेब लोग थोड़ा चिहुंका रहता है. जिस दिन इहो नहीं रहेगा तो मालिक लोग लखेद-लखेद कर मारेगा. इ झंडा और डंडा में बहुत ताकत है जानकी भइया. नाही त इ मिल कबका..."

जानकी मिस्त्री निरुत्तर हो गये, "वाह महराज, आप तो काफ़ी समझदार हो गये हैं. लेकिन जो हम कह रहे हैं जरा उहो

त सोचिए, मिल केतना त पइसा लगा दिया. ओकरे बाद भी घाटा. आखिर केतना दिन झेलेगा. कवनो कुबेर का खज़ाना तो है नही. दुनो हाथ से उलिचते जाओ. और उ बढ़ता जायेगा. जरा आपे सोचिए हमारे को जो पगार मिल रहा है... ओतना काम हम कर रहे का .... आपे कह रहे हैं कि बाहर हमको कवनो कानी कौड़ियो नही देगा."

पाड़े जी बोले, "सब ठीक है भइया. आप का कवनो बात काटे है का कभी. लेकिन साहब लोग का कवनो ज़िम्मेदारी नही है का... हमसे कई गुना पगार है उनका..."

"का महराज फिर बुरबकई वाला बात कर दिये न... अब्बे इ मिल बंद हो जाय त किसका नुकसान होगा.. हमरे न... साहब लोग को तो पचास जगह नौकरी धरा है. एक ठो छोड़ेगा दस जगह से बुलावा आ जायेगा. हम मज़दूर है... हमे मज़दूरी नही मिलेगी तो हम बेकार हो जायेगे... उ का कहते है... जब ज़्यादा माल बेकार होने लगता है - 'रद्दी बढ़ रहा है' त हमे रद्दी नही बनना है महराज जी..." जानकी मिस्त्री भावुक हो गये और उठ कर लाइन मे मशीन ठीक करने चल दिये.

तीन वर्ष की बात है. मिल चलती रहेगी तो फंड... ग्रेच्युटी... मिल जायेगा... छुटकी का ब्याह भी धूम धाम से कर देगे. छोटा बेटा भी कही हिल्ले से लग जाय तो वह यह शहर छोड़ देंगे. फिर गांव लौट जायेगे. बस मिल चलता रहे... शहर के हालात बिल्कुल ठीक नहीं है. देखते-देखते भारत का मैनचेस्टर कहे जाने वाला यह शहर आज मज़दूरों की रद्दी मे बदल चुका है. धुआं उगलने वाली मिलें एक सुबह मौत की तरह शांत हो जातीं... कोई नहीं जानता इसमें कल तक हंसते-खेलते मज़दूर अब क्या कर रहे है. हे ईश्वर ! बस उनकी मिल चलती रहे...

पर कहां सुना ईश्वर ने उनकी आवाज़ को...

मिल गेट पर नारे-बाजी रोज़ होती रही. लोटा पाड़े गला फाड़ कर चिल्लाते, "जो हमसे टकरायेगा... चूर-चूर हो जायेगा." दिल्ली तक से बड़का नेता लोग भी आते रहे... मिल ही धड़कन को कोई तेज़ नहीं कर पाया. हां इन सबसे इतना ज़रूर हुआ कि मिल दूसरे सेठ ने नही खरीदा. मिल धीरे-धीरे मर रहा था. और एक सुबह लोगों ने देखा मिल को पुलिस के जवानों ने घेर रखा था. मुख्य द्वार पर एक बड़ा सा ताला लटक रहा था. जब शहर सो रहा था, तभी मिल की हत्या कर दी गयी और साथ ही सैकड़ों मज़दूरों के सपने भी...

जानकी मिस्त्री का गांव लौटने का सपना भी अधूरा रह गया. मिल खुलने के इंतज़ार में... इसी शहर में दम तोड़ दिये और लोटा पाड़े...

लोटा पाड़े अब भाई-भतीजों के लिए बोझ थे. उनका दिमाग भी ठीक से नहीं चल रहा था. जानकी भइका भी नही रहे जो उनकी सुध लेते. एक दिन बहुरिया ने उनका लोटा नचा कर फेंक दिया," पता नहीं यह बुढ़वा कब तक ख़ून चूसेगा. लगता है कउआ का मास खा कर आया है..."

रोज़-रोज़ की जलालत से तंग आकर लोटा पाड़े घर छोड़ दिये. अब जांगर था नहीं कि मेहनत करते. पेट की आग तो बुझानी ही थी. भीख मांगना शुरू कर दिया. लोटा अब भी था उनके पास, लेकिन वह अब भिक्षा-पात्र बन चुका था. एक हाथ मे लोटा... दूसरे मे सहारे के लिए डंडा...

अक्सर डंडा के ऊपरी छोर पर चिथड़ा बांधे बंद मिल के गेट पर आकर चिल्लाते, "दुनिया के मज़दूरों एक हो... जो हमसे टकरायेगा... चूर-चूर हो जायेगा."

शहर में मज़दूरों की रद्दी थोड़ी और बढ़ गयी थी. मीडिया चीखी. संसद में भी ख़ूब हो-हल्ला होता रहा... फिर शांति... लेकिन लोटा पाड़े कहां शांत थे... उनकी मुट्ठियां अभी भी तनी थी...

जी/वन/टी, २५७ अरमापुर स्टेट,
कानपुर-२०८ ००९
फोन : ०५१२-२२१५९११

ग़ज़ल

देवेंद्र पाठक 'महरूम'

हो गयी दुनिया नहीं, इतनी भी बदतर, देख तो।
देखने को है बहुत कुछ अब भी बेहतर, देख तो ॥
है बिछाने को ज़मीं बिस्तर के मानिंद आज भी;
ओढ़ने को आस्मां है सर के ऊपर, देख तो ॥
कम सही लेकिन हैं अब भी चलन में ईमां-यकीं;
तू कभी इस राह पर कुछ दूर चलकर, देख तो ॥
इस पसीने की नदी में जो नहाया तर गया;
है न ये गंगो-जमन से पाक कमतर, देख तो ॥
तेरे डरने से ही बढ़ते ज़ालिमों के हौसले;
उठ खड़ा हो और तू लाठी सा तनकर, देख तो ॥
कर गुज़रने की गज़ब की ताब है इन्सान में;
कर शुरू ज़द्दो ज़हद, हद से गुज़रकर देख तो ॥
क्या हुआ हासिल पुरा-पगडंडियों को नापकर;
तू पहलकर और यह रस्ता बदलकर, देख तो ॥
बांस की बन बांसुरी बस, दर्द-ओ ग़म ही गान तू;
बांस-वन सा धूप में तप, फिर सुलगकर, देख तो ॥
हारकर तुझसे हवाएं ग़लत रुख़ देंगी बदल;
राहे-सच्चाई पे तू 'महरूम' चलकर, देख तो ॥

प्रेमनगर, खिरहनी (दक्षिण),
साइंस कॉलेज डाकघर, कटनी (म. प्र.) ४८३५०१

कहानी

सुबह

कभी एक समय था, जब ये औरतों के काम थे. पुरुष इन ज़िम्मेदारियों से मुक्त थे. कैसे रहे होंगे वे दिन ! आन्या के जूते पॉलिश करते-करते उसके मस्तिष्क में ये अप्रासंगिक सी बातें खुल-फैल रही थीं. उसे रात-दिन ऐसे ही सपने आते थे - वो आन्या का नाश्ता बना रहा है, वो आन्या को टाइम-टेबिल से बैग लगाने को कह रहा है, छोटी को नहला रहा है... वो दिन के आरंभ में पैदा हुए इन दबावों से ज़रा भी इधर-उधर नहीं सरक पाता था.

"आन्या ! ओ आन्या ! चल जूते पहन ले... हो गयी तैयार क्या ?" इतना कहकर बिना उत्तर सुने वह रसोई में आ गया. हाथ धोये और स्लैब से सटकर खड़ा हो गया. स्लैब पर गैस-चूल्हे के पास दूध का एक मग, पॉलीथीन में दर्जन भर अंडे और साथ ही रखी कटोरी में प्याज़ कटा हुआ है. उसने एक सरसरी नज़र पूरे स्लैब पर डाली. यह नाश्ते की तैयारी है. आन्या को नाश्ते में ऑमलेट बेहद पसंद है; इसलिए फिक्स मैनू है - ऑमलेट, एक परांठा और एक मग दूध.

"बस ऑमलेट बनाना है, बाकी सब तैयार है..." वह धीरे से बोला.

आन्या ने स्कूल-ड्रेस पहन ली थी. वह भीतर से बैग लगभग घसीटती हुई लायी और डायनिंग-टेबिल के साथ टिकाकर स्वयं कुर्सी खींचकर बैठ गयी.

वह जल्दी से रसोईघर से बाहर आया और नाश्ते की ट्रे टेबिल पर रख दी. दरवाज़ों और खिड़की से परदे हटा दिये. धूप अभी दरवाज़े तक नहीं पहुंची थी केवल बरामदे की गोलाकार रेलिंग को स्पर्श भर कर रही थी. ड्राइंग-रूम के भीतर धूप की आमद का आभास पर्दों के हटते ही हल्के प्रकाश के धुंधले धब्बे-सा इधर-उधर ठहर गया.

आन्या के ठीक सामने ट्रे रखी थी. उसने पहला निवाला हाथ में लेकर कहा, "पापा ! एक किताब लेनी है... इंग्लिश स्टोरीज़ की सौ रुपये दे दो."

उसने आन्या की ओर देखा. वह उसकी आंखों में छुपी हंसी को पढ़ना चाहता था. आन्या संदेह समझ गयी, वो मुस्करा कर बोली, "सच पापा ! हफ्ते-भर से रोज़ टोकती है मैडम... लगभग रोज़ ही डांट पड़ती है."

उसकी मुस्कराहट पर वो गंभीर हो गया, कुछ न बोला और दूसरे कमरे में चला गया.

"आन्या ! सवा सात हो गये बेटा, बस आने वाली होगी." वह कमरे में लगी दीवार घड़ी देखकर हड़बड़ी में बोला.

"लंच रख लिया न !"

"जी पापा."

वो बैग कंधे पर लटकाये तेज़ी से सीढ़ियां उतरने लगी.

"बाय पापा."

वह जल्दी से रसोई से निकलकर बरामदे में आकर बोला, "हां, हां ठीक है बेटा, बाय, बाय..."

आन्या के जाने के बाद उसने अपने शरीर को कुर्सी पर छोड़ दिया. एक लंबी सांस स्वतः ही छाती से निकल सोफ़े, मेज़, कुर्सियों के इर्द-गिर्द अदृश्य सी फैल गयी. अब उसे स्वयं के अस्तित्व का अहसास था जो थोड़ी देर पहले नहीं था.

उसने बैठे-बैठे ही कुर्सी से तिरछे होकर देखा, दीवार घड़ी ठीक-साढ़े-सात बजा रही थी. यह घड़ी उसके लिए एक स्थायी चुनौती थी. रोज़ सवेरे मन होता था कि तोड़ दूं... लेकिन वह कभी नहीं तोड़ पाया. अगले दिन पुनः उसकी सांसें टिक-टिक की यांत्रिक ताल पर गतिमान हो उठतीं - एक और न टलने वाला संघर्ष शुरू हो जाता था. हर नयी सुबह की आहट पर !

बाबू ! उठ जा." चाय की प्याली से घूंट भरते हुए उसने छोटी को उठाने का पहला लेकिन अनिश्चित-सा कदम उठाया.

गजेंद्र रावत

मान्या की कोई प्रतिक्रिया न देख उसने अखबार टेबिल पर पटक दिया, शेष चाय को एक घूंट में खत्मकर उठ खड़ा हुआ.

डबल बेड बेतरतीब फैला हुआ था. धूप की एक किरण खिड़की से प्रवेश कर रही थी, जिसमें धूल के कण अंतरिक्ष में घूमते छोटे-छोटे पिंड से दिखाई दे रहे थे. कोने में दीवार से सटकर मान्या दुबकी सी सो रही थी. उसका सिर्फ़ माथा ही दिखाई दे रहा था, बाकी शरीर रज़ाई के उठावों में छिपा हुआ था. एक तरफ़ से रज़ाई बिस्तर से नीचे लटक रही थी और उसी ओर एक तकिया फ़र्श पर गिरा हुआ था. दूसरी रज़ाई रोल होकर सिरहाने चिपकी हुई थी.

उसने मान्या के चेहरे से रज़ाई हटायी. उसने देखा उसका चेहरा रज़ाई की गरमाइश से गुलाब की पंखुड़ियों-सा हो गया था. वो ठिठक गया - क्षण भर अपलक उसे निहारता रहा.

वह सोचने लगा... इतनी गहरी नींद, यहां तक तो आवाज़ भी नहीं पहुंची होगी.

"मान्या बेटे ! उठ, टाइम हो गया." उसके स्वर से मान्या ने करवट ली और फुसफुसायी, "थोड़ी देर और पापा... बस पांच मिनट... बस."

वह बेड पर मुचड़ी हुई चादर पर लेट गया और धीरे-धीरे उसके गाल सहलाने लगा.

"उठ बेटे, तू लेट हो जायेगी !" कहते-कहते वह सोचने लगा, इतने सवेरे बच्चे को उठाना... ये तो ज़ुल्म है ! ऐसे में बच्चे को उठाना चाहिए क्या ?

"उहूं, कुछ नहीं होता पापा !" मान्या की आंखें भी बंद थी.

वह देख, पार्क में बिल्ली आयी है... चूहे पकड़ने... चल देखने चलते हैं." वो जानता था, बिल्ली को देखने की जिज्ञासा उसे हमेशा बनी रहती है, उसके लिए वह नींद का मोह छोड़ देगी. मान्या ने दोनों बाजू ऊपर उठा लीं और शरीर को ढीला छोड़कर धीरे से फुसफुसायी, "गोदी पापा."

मान्या छः वर्ष की थी लेकिन उसकी गोद की आदत नहीं गयी थी - मौके बे-मौके वह स्थिति का लाभ उठा लेती थी.

उसने उसे दोनों हाथों से उठा लिया. रज़ाई की गर्मी से अभी भी उसके गाल गरम और गुलाबी थे. उसने गालों को चूमा और उसे सीने से लगा लिया. मान्या की छोटी-छोटी हथेलियां उसकी पीठ पर थीं. वह दरवाज़ा खोल बरामदे में आ गया.

"पापा बिल्ली चूहे का क्या करती है ?"

"नाश्ता करती है."

बाहर फैले बरामदे में धूप इस समय बे-वजह लग रही थी, कुछ वक्त होता तो कुर्सी डालकर बैठा जा सकता था. वो मान्या को लेकर रेलिंग तक जा पहुंचा, जहां से पार्क का तिकोना किनारा दिखाई देता था.

"वह देख, बिल्ली." नीचे पार्क में सचमुच ही काले रंग की बिल्ली चूहों द्वारा बनाये बिलों के समीप घात लगाये दुबकी हुई थी - नज़रों को बिल के मुंह पर जमाये.

"आज ज़रूर मिलेगा चूहा इसको." मान्या आंखों को हाथों की मुट्ठियों से मलते हुए बोली.

"क्यों ? क्या है आज ?" वो विस्मय से बोला.

"आज कौव्वे शोर नहीं मचा रहे न."

उसने मान्या की ओर देखा और मन ही मन कहा कि बच्चे भी सोच लेते हैं क्या ये सब."

"चल बेटे, मंजन कर ले." वह उसका ध्यान बिल्ली से हटाना चाहता था.

"अरे, दो मिनट पापा... पहले चूहा तो पकड़ ले, यह बिल्ली."

राजेंद्र रावत

२५ अक्तूबर १९५८, नयी दिल्ली:

विज्ञान स्नातक

लेखन : *छुटपुट कविता, कहानी और लेखों का कुछ हिंदी पत्रिकाओं में प्रकाशन.*

संप्रति : *दिल्ली सरकार के अधीन अस्पताल में कार्यरत.*

"इसमें टाइम लगेगा बेटे... तू लेट हो जायेगी." वो उसे गोद में लिये-लिये ही वापस मुड़ गया. उसने भी कोई प्रतिरोध नहीं किया.

धूप दरवाज़े-खिड़की से अंदर आकर फ़र्श पर ग्रिल की चौकोर-चौकोर आकृतियां बना रही थी. उसने कमरे में आकर मान्या को गोद से उतार दिया. वह बिना ना-नुकर के मंजन करने गुसलखाने चली गयी.

रसोई के चिकने स्लैब पर एक बड़ी-सी शिमला मिर्च पड़ी थी, जो कल रात बनी सब्जी से न जाने कैसे बच गयी थी. उसने उसे तिरछी नज़र से देखा - शिमला मिर्च की जगह-जगह उठी संरचना उसे उसके बॉस के चेहरे-सी दिखाई दे रही थी. उसे पिछले दिन की याद आ गयी... वह बॉस के कमरे में घुसा ही था कि एक सवाल आ टकराया, "ये टाइम है आने का ! मैं एक हफ़्ते से नोट कर रहा हूं."

बॉस जहां बैठा था कमरे के उस हिस्से में टेबिल लैंप की तेज़ रोशनी थी, शेष हिस्से में झुटपुटा-सा कमरे में चीज़ों पर पसरा हुआ था.

"सॉरी सर, सुबह बच्चों को स्कूल भेजना पड़ता है... इसलिए कभी थोड़ा लेट हो जाता हूं." वो सूखे गले से खर-खर करती आवाज़ में धीरे-से बोला.

"बीवी क्या करती रहती है... वो क्यों नहीं भेजती." टेबिल लैंप की रोशनी में क्रीम-चुपड़ा काला चेहरा चमक रहा था.

"सर, उसकी नाइट ड्यूटी थी... वो लेट घर..." वो रुक-रुक कर अधूरा वाक्य ही बोल पाया.

"ओह ! तो यह बात है: वो ड्यूटी करती है और तुम कंपनी के काम के टाइम में बच्चे खिलाते हो. ...मैं पूछता हूं समझ क्या रखा है जब मरजी आओ और जब मरजी चल दो."

क्षण भर, कमरे के स्लेटी अंधेरे में डरावनी चुप्पी ठहर गी.

"यह आखिरी चांस है, कल से टाइम पर नहीं आये तो ना इंतजाम दूसरी जगह कर लेना... जहां तुम बच्चे स्कूल त सको. यहां तो टाइम से आना पड़ेगा." बॉस ने इशारे से ने के लिए कहा.

उसका शरीर सुन्न पड़ गया. वो अपनी जगह से हिल-डुल पा रहा था, जैसे किसी दलदल में धंसता जा रहा हो.

मान्या ने उसका कुर्ता पकड़कर खींचा. उसकी तंद्रा टूटी.

"पापा मैं नहा लूं ?"

"नहीं बेटा, मैं पानी गर्म करता हूं... मैं नहलाऊंगा अपनी री बेटी को !" कहते-कहते उसने मुड़कर देखा. नन्ही-सी या तौलिया कंधे पर डाले खड़ी है. उसने झुककर स्नेह से चूम लिया.

"अच्छा पापा आप शुरू करा देना फिर मैं नहा लूंगी."

"ठीक है मेरे बच्चे, तू बैग लगा ले, टाइम-टेबिल के नाब से."

मान्या भीतर चली गयी.

वह नहाकर बाहर आयी तो वो उसे स्कूल-ड्रेस पहनाने गया, साथ ही उबले अंडे का एक टुकड़ा उसके मुंह में डाल ा.

"पहले कपड़े तो ठीक करने दो !" अंडे को मुंह से ालते हुए मान्या बोली.

"बेटा साथ-साथ खाती जा, जल्दी बड़ी हो जायेगी फिर ने आप खाना." उसे ऐसा लग रहा था न जाने कब से वह क्रम को दोहरा रहा है, जब मान्या बड़ी होगी तो उसे निजात गी.

उसकी एक आंख दीवार-घड़ी से बंधी थी.

"मान्या जल्दी कर... पूरा अंडा खा बेटे, खाली पेट स्कूल जाते." फिर रुककर बोला, "जल्दी कर वैन आने वाली है!"

आठ बजकर दस मिनट पर मान्या को वैन ले गयी. वह या चढ़ता हुआ ऑफिस जाने की सोचने लगा... जब तक नहीं आ जाती कैसे जाऊं ? इस लिहाज से नर्सों की नाइट बहुत बुरी है, कब आयेगी, कब जाऊंगा... ओफ ! बॉस...

वह चाय का कप लेकर बड़ी उद्दंडता से सोफे पर पैर र देता है. सामने रसोई की स्लैब पर शिमला मिर्च मानो रा रही हो... बॉस के शब्द उन्हीं तीखे तेवरों के साथ उसके ग में झनझनाहट पैदा कर रहे थे.

धूप खिसककर ड्राइगरूम तक आ पहुंची थी जिससे कमरे हवा गुनगुनी होती जा रही थी. दोनों को स्कूल भेजने से संतुष्टि बोध उसके दिलो-दिमाग पर छा रहा था. समीप के

लघुकथा

नमस्कार

✍ के. पी. सक्सेना 'दूसरे'

वह मुझे अक्सर रास्ते में मिल जाया करता था. उल्लेखनीय यह था कि कभी-कभी तो वह बड़ी आत्मीयता से नमस्कार करता और कभी, किसी अजनबी की तरह बगल से गुज़र जाता. उम्र में वह मुझसे इतना छोटा था कि अगर मैं पहल करता तो वह शायद झेंप जाता.

ऐसे ही एक दिन फिर जब वह मुझसे बिना नमस्कार किये, बगल से निकलने लगा, तो मुझसे रहा न गया. मैंने उसे जानबूझ कर रोका और पूछा, "क्यों, तुम्हारा कोई जुड़वा भाई है ?" "नहीं, पर क्यों अंकल ?" वह अचकचा गया था.

"मुझे इसलिए लगा कि तुम्हारे जैसा ही एक और लड़का कभी-कभी इधर से गुज़रता है और अक्सर दुआ-सलाम हो जाती है."

बात आयी गयी, हो गयी. अब वह सामने पड़ते ही न केवल नमस्कार करता है, मुस्कुरा भी देता है. मैं भी उससे समय रहने पर हाल-चाल पूछ लिया करता हूं.

शांतिनाथ नगर, टाटीबंध,
रायपुर (छ. ग.) - ४९२०९९

किसी घर से बेगम अख्तर का मद्धिम स्वर कानों में पड़ रहा था. स्वर का माधुर्य मानो दिमाग को सहला रहा हो. उसने आज के अखबार की ओर देखा लेकिन उसे उठाया नहीं. उसने गरदन का पिछला भाग सोफे पर टिका दिया. ...देखते ही देखते उसकी आंखे बंद होने लगी.

स्नेहा दरवाज़े पर ठिठकी. दरवाज़ा खुला था. वह धीरे से भीतर प्रवेश कर गयी. आलोक सोफे पर बेसुध सो रहा था. वो चुपचाप साथ के सोफे पर बैठ गयी.

सूरज की किरणें सीधी फर्श के सफेद पत्थर पर पड़ रही थीं और रिफ्लेक्ट होकर सारे ड्राइंग रूम में फैल गयी थीं. स्नेहा ने बिना कुछ कहे उसके कंधे पर हाथ रखा. स्पर्श भर से वो उठ खड़ा हो गया, चौंककर बोला, "क्या बजा है ?"

"साढ़े दस."

"तुम इतनी लेट कैसे...?"

"अरे हुआ क्या, रिलीवर लेट आयी, फिर चार्ज में एक-एक मरीज़ देना होता है... पता है वो जो वेंटिलेटर पर बुढ़िया थी... वो गयी..." वो बोलती जा रही थी परंतु आलोक सामने रसोई की स्लैब पर पड़ी शिमला-मिर्च को देख रहा था.

डब्ल्यू. पी-३३/सी, पीतम पुरा, दिल्ली-११० ०३४.

कहानी

भवानी का ब्याह

शिबू भगत ने खैनी की चुटकी होंठों में दबाते, आंखों, को बड़े दार्शनिक भाव से अधमुंदी कर गंभीरता से कहा, "कोच्छ नहीं यार, दुनिया साली मतलब की है. जिसे देखो, रोटी के अपने टुकड़े से दाल अपनी तरफ खींच रहा है..."

हरिहर सिर्फ हूं-हां कर के रह गया, उसका ध्यान चाय छानने में लगा था, तीन ग्राहक बैठे अधीर हो रहे थे.

शिबू भगत के पेट में खलबली मची हुई थी, लेकिन जब हरिहर ने पूछा नहीं कि क्या बात है, तो कुढ़ गया. थूक की पिचकारी फेंक खुद कहने लगा, "जरा सोचो, बेचारे ग़रीब-गुर्बा लोग सब्जी बेच कर चार पैसे कमा लेते हैं, उस पर निगम को टैक्स भी देते हैं, फिर ससुरे सिपाही कहां जान छोड़ते हैं, लेकिन..."

अब एक ग्राहक ने पूछा, "क्या हुआ, भगत जी ?"

"हुआ क्या," शिबू ने वितृष्णा से कहा, "सालों ने सारी दुकानें पीछे को ठेल दीं, बहुतों को तो इधर-उधर फेंक दिया ! ये लोग - क्या कहते हैं...हां, अतिक्रमण हटाते फिर रहे हैं."

अन्य ग्राहक बोल पड़ा, "तो क्या बेजा किया ? रास्ता रुक जाता है, सब्जीवाले जगह घेर लेते हैं..."

शिबू भगत फुंकार कर रह गया. क्या कहता, बात सही थी, और भी लोग उसी आदमी के पक्ष के लगते थे.

शिबू भगत सब्जी मंडी के दूकानदारों का एक तरह से चौधरी था. उसकी चार दूकानें इस छोटी सी मंडी में थीं, और अपने धाकड़ मिज़ाज के कारण निगमवालों, सिपाहियों आदि से वही निबटता था. अन्य दूकानदार उसे अपना नेता मानते. हरिहर पात्र उड़ीसा का रहने वाला, सीधा-सा आदमी, इधर लगभग पंद्रह साल से चाय की दूकान कर रहा था. काले रंग का पतला सा और मितभाषी पात्र चाय बहुत बढ़िया बनाता था. लोग वहां भीड़ लगाये रहते. मंडी के पास में ही किराये के लिए नगर-निगम के बनवाये लकड़ी के खोखों में उसका डेरा था.

उसी समय पात्र की बेटी भवानी दूध का बर्तन लिये आ गयी. उस ग्राहक की बात उसने सुन ली थी. झनक कर बोली, "ठीक कहा. ये सब्जीवाले बड़े थेथर होते हैं. दूकान उठा कर फेंक दो; और फिर सड़क पर टोकरी रख देते हैं. उस पर सवारियों के साथ गाय-बकरियों की भीड़ ! रास्ता चलना मुश्किल हो जाता है."

शिबू भगत अपना बड़प्पन रखते हुए हंस कर बोला, "हां, हां, सुन ली तेरी बात कल की छटकी छोकरी, हाथ भर की जीभ."

लोग हंसने लगे. भवानी नागिन की तरह फुंकार कर शरीर को एक लहर के साथ बल देती उसे घूरती वापस लौट गयी. वह अब "कल की छटकी सी छोकरी" नहीं थी जिसे शिबू बरसों से देखता आ रहा था, बल्कि अठारह की एक भरपूर युवती बन गयी थी. रंग गेहुंआ, बड़ी-बड़ी काली पानीदार आंखें, सुतवां नाक, भरे होंठों के साथ अंडाकार चेहरे पर फैली बालों की लटें, सुगठित कटावदार शरीर... शिबू ने जैसे उसे आज पहली ही बार देखा हो. उसे ध्यान ही न रहा, और हरिहर की यह मरगिल्ली सी छोकरी ऐसी बन गयी. जवानी जैसे फटी पड़ रही है...

चंद्रमोहन प्रधान

रात में मंडी की भीड़ छंटी, तो आठ बजे शिबू हरिहर की दूकान पर आ बैठा. बीड़ी पात्र को दे खुद भी सुलगाई, और बोला, "क्यों हरिहर, भवानी की शादी अब क्यों नहीं कर देते ? सयानी हो गयी है."

हरिहर को यही चिंता लगी रहती थी. दोस्त की सहानुभूति देखकर चिंतित स्वरों में बोला, "कहते तो ठीक हो, यही फिकर लगी रहती है, लेकिन भई, लड़का खोजने का उद्यम करना पड़ेगा !"

"तो खोजो."

"यहां परदेसी हूं भई, अपना यहां कौन बैठा है ! मुझे खुद ही दूकान बंद कर के लगना होगा. उस पर दान-दहेज बिना छोकरी कैसे पार लगेगी !"

शिबू जानता था, हरिहर की पत्नी बरसों पहले चल बसी है, घर में भवानी ही है, और हरिहर की आर्थिक हालात खास दान-दहेज देने की नहीं है. कुछ देर चुप रहा, फिर बोला, "ऐसा उपाय बता दूं, कि एक भी पैसा खर्च करना न पड़े, और लड़की को अच्छा घर-वर मिल जाये, तो ?"

हरिहर ने उसका हाथ पकड़ लिया, "भई, वही करो. तुम तो पुराने मित्र हो."

शिबू कुछ इधर-उधर कर बोला, "लड़का तो तुम्हारे ही मने है."

"ऐ, कहां ?" हरिहर बेवकूफों की तरह इधर-उधर देखने ा.

शिबू ने ठहाका लगाया, "अरे भलेमानुस, इधर तो देखो, साढ़े तीन हाथ का नहीं दिख रहा हूं तुम्हें ?"

हरिहर जैसे आकाश से गिरा, "तुम ? क्यों मज़ाक करते भाई !"

'मज़ाक कैसा ?" शिबू ने गंभीरता से कहा, "मेरे साथ दो ब्याह ! मुझ में क्या कमी है ? ख़र्च सब मेरा.."

हरिहर कुछ न कह सका. कहने की बात क्या थी !

"देखो हरिहर, लड़की शादी की उम्र की हो गयी है, तुम्हे ा दान-दहेज के कौन, कैसा लड़का मिलेगा ? और मै तो कुल स-तैंतीस का ही हूं, लड़की मौज करेगी. सोच कर विचार ना..."

वह मंडी की ओर लौट गया.

हरिहर रात मे देर तक सोचता रहा. शिबू भगत की बात बहुत अखरी थी. भले ही वह खुद को बत्तीस-तैंतीस का ने, छियालीस के हरिहर से दो-तीन साल छोटा होगा, हरिहर ता था. अधेड़ उम्र के, दारू गांजा वगैरह के आदी शिबू से अपनी जवान बेटी ब्याह दे. उधर शिबू ऐसे आदमी से नाहक टटा मोल लेना भी गलत है. शिबू उखड़ जाये, तो उसकी न का पटरा ही बैठ देगा. फिर भी, मन नहीं मान रहा था.

अगले दिन शिबू भगत से तो भेंट नहीं हुई, लैकिन सब्जी के एक-दो बुजुर्ग दुकानदार उसे समझाने आये कि शिबू ा से बेटी की शादी कर देनी उचित है. वह मंडी का चौधरी पैसेवाला है. ज़रा उम्र ज़्यादा है तो क्या, मर्द की उम्र और न-सूरत कौन देखता है. जवानों जैसा दमदार है, हैसियत है. मे सास-ननद आदि का झंझट नही है. लड़की हरिहर के ने ही रहेगी, रानी बन कर मौज करेगी. हरिहर की प्रतिष्ठा बढ़ेगी...

लेकिन, हरिहर का मन नही मानता था. उसने साफ़ मना दिया.

दो तीन दिनों से शिबू मिलने चाय पीने नहीं आया था. बाद एक दिन कुछ नौजवान सब्जीवाले चाय पीने आये चाय मिलावटी बता कर खाहमख़्वा का झगड़ा करने लगे. तीन कप-गिलास भी फोड़ दिये और पैसे बिना दिये क्यां देते हुए चले गये. इन्हीं लोगों को पहले चाय अच्छी थी, अब क्या फ़र्क पड़ गया सो हरिहर भी समझ रहा

फिर तो यह जैसे रोज़ की बात हो गयी. चौथे दिन र जब दूकान पर था, भवानी सौदा लाने गयी हुई थी, उसके डेरे मे चोरी हो गयी. चोरी के लायक ज़्यादा क्या था, हां, तोड़-फोड़ बहुत हुई. आस-पास वाले मार्मिक दृष्टि से एक-दूसरे को देख कर चुप ही रहे. हरिहर किस से शिकायत करता.

उसने किसी तरह सह लिया, लेकिन दूकान चलाना दिन पर दिन मुश्किल होता गया. मंडी, आसपास वालों ने जैसे दूकान का बॉयकट कर रखा था. असली बिक्री इन्हीं से थी, और अब ये लोग चौक पर चाय पीने लगे. अक्सर उपद्रवी किस्म के लोग आ कर झगड़ा कर जाते. बाहरी ग्राहक भी वहां हंगामों के कारण आने से हिचकने लगे.

भवानी को पास-पड़ोस की औरतों से पता लग गया था कि शिबू की मंशा क्या है और यह सब क्यों हो रहा है. वह निरीह गुस्से में बल खा कर रह जाती. शिबू ऐसे दबंग मर्द से क्या लड़ने जाती. बाप का मौन देख कर वह खौलती रहती.

चन्द्रमोहन प्रधान

३० दिसंबर १९४०,
८ वर्ष की अवस्था में टॉयफॉयड से १०० प्र. श. बधिर, पटना आर्ट कॉलेज से चित्रकला में डिग्री - जी. डी. आर्ट (१९६१)

लेखन : *१९६२-६३ से लेखन प्रारंभ. सभी प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं मे लगभग ७-८ सौ रचनाएं प्रकाशित.*

प्रकाशन : *"एकलव्य" (उपन्यास), "जिस गांव नहीं जाना", "रिश्ते", "शहर पिघल रहा है." - कथा संकलन प्रकाशित. एक उपन्यास - "बिखरे रंगो के इंद्रधनुष" प्रकाशनाधीन.*

संपादन : *दो दैनिक पत्रो का १२ वर्ष संपादन. विभिन्न पत्रों मे स्तंभ लेखन, अन्य नामों से विभिन्न विधाओं मे लेखन.*

विशेष : *१९९९ मे ४ मास अमेरिका यात्रा. वहां की हिंदी पत्रिका "विश्व विवेक" मे सपरिचय कहानी. अमेरिकी बॉयोग्राफिकल संस्था की सलाहकार समिति मे मानद सदस्यता. वहां के हू-ज़ हू मे उल्लिखित.*

सम्मान : *बिहार राष्ट्रभाषा परिषद द्वारा २००४ मे सर्वोच्च साहित्यिक सम्मान "साहित्य साधना सम्मान."*

संप्रति : *स्वाधीन लेखन, दो शिक्षण संस्थानो का संचालन, सामाजिक संस्थाओं मे सक्रिय.*

रात को हरिहर के डेरे में न जाने कैसे आग लग गयी, वह तो, लोग जाग गये, और झटपट आग बुझा दी गयी, लेकिन बांस की टट्टी का दरवाज़ा तो जल ही गया.

हरिहर का सिर घूम गया. अब यहां से दाना पानी उठा. नदी में रहते वह मगर से बैर कर बैठा है, तावान कौन चुकायेगा.

उस दिन दूकान नही खुली. दोपहर में वह भवानी से बोला, "चलो बेटी, अब अपने घर लौट जायेंगे. यहां अब रहना नहीं हो सकेगा."

"अपने घर ?" भवानी का जन्म यहीं हुआ था. वह नही समझ सकी.

"हां, उड़ीसा. झारखंड वाले हमें रहने नहीं देना चाहते. आज सामान बांध लेना, सबेरे की बस है..."

भवानी समझ रही थी कि वे कैसे झारखंड वाले हैं. कुछ नही बोली. देर तक एकांत में बैठी सोचती रही.

❒

शिबू भगत का अपना घर मंडी के पीछे था. अकेला रहता था. एक औरत रोज़ दो बार भोजन बना जाती थी. दोपहर बाद मंडी से लौट भोजन कर घर के आगे बैठ खैनी बना रहा था कि जैसे उसे अपनी आंखों पर विश्वास न हुआ. सामने से भवानी खुद चली आ रही थी.

आश्चर्य ने मन की गुदगुदी का रूप धारण करना चाहा, लेकिन भवानी तो जैसे सचमुच भवानी की तरह रौद्र रूप धारण किए हनहनाती आ कर सामने खड़ी हो गयी. बिजली बरसाती आंखों से उसकी आंखो में घूरती नागिन की तरह फुंकार बोली, "तुम मेरे साथ शादी करने को मरे जा रहे हो, है न ?"

शिबू को काठ सा मार गया, बोली नही निकल सकी...

"तो कर लो शादी, मैं यह सामने खड़ी हूं ! आ जाना बरात ले कर ! बेटी की उम्र की लड़की से शादी की बात करने तुम्हें लाज नही आती ? ऐं ?"

शिबू की बोलती बंद ...आंखें फाड़े देखता रहा. क्या बोले !

भवानी ने वैसे ही कड़क कर कहा, "सीधे-सादे बाप को यों तंग करते तुम्हें लाज शरम नहीं आती ? तो ठीक है, सुन लो कान खोल कर. मैं अभी जा के उससे कहे देती हूं कि तुम्हीं से शादी करूंगी. देखना, फिर क्या होता है. चार दिन में शादी का भूत उतार न दिया तो कहना..."

वह उसी तरह झनझनाती हुई उल्टे पैरों लौट गयी.

❒

अगले दिन शिबू भगत मंडी से नदारद ! दूकानें बंद पड़ी रही. दिन भर उसका घर भीतर से बंद रहा.

शाम को भवानी चाय की दूकान के पीछे ओट में कोयले तोड़ रही थी. हरिहर आखरी बार दूकान कर रहा था. कल अपने जन्मस्थल संभलपुर लौट जाने का विचार लगभग पक्का कर लिया था. हालांकि भवानी ने कल साफ़ कह दिया था कि कहीं जाने की ज़रूरत नही, यहीं रहेंगे. वह देख लेगी कोई क्या कर लेता है. किंतु हरिहर दुविधा में था. बेचारी लड़की कर क्या सकेगी, यहां रहना गलत है.

तभी आठवें आश्चर्य की तरह शिबू भगत खुद उसकी दुकान पर आ बैठा. जम्हाई लेता बोला, "हरिहर, एक कड़क चाय तो पिलाना, आज मन सुस्त है..."

हरिहर को यह शिबू का पुराना मित्रों वाला अंदाज अचंभे में डाल रहा था, लेकिन वह चाय के लिए ताज़ा पानी चढ़ाने लगा. जब ग्राहक चले गये, तो शिबू ने चाय लेते हुए कहा, "भवानी की शादी के लिए कुछ सोचा ? कोई अच्छा सा लड़का ठीक किया ?"

हरिहर ज़ब्त न कर सका, अब फट पड़ा, "तुम्हीं ऐसा कह रहे हो ! दूकान करना हराम कर दिया, घर में आग लगी, चोरी हुई, रोज़ के झगड़े... अब कल उड़ीसा जा रहा हूं."

"चल चल, बहुत बातें न बना.. कौन तेरी बड़ी दूकान है या तू धन्ना सेठ है." हुं.. उड़ीसा जायेंगे ! कुछ ज़रूरत नहीं. मैंने तेरी बेटी के लिए अच्छा सा लड़का जुटा दिया है, ठहरना..."

हरिहर को मुंह बाये छोड़ वह गिलास नीचे रखता मंडी के अंदर चला गया, और तुरत एक २०-२२ के नौजवान लड़के को ले आया. उससे बोला, "रमेश, देखो. कल हीरा बढ़ई को साथ लेकर हरिहर के डेरे में नया दरवाज़ा लगवा देना है, डेरा देखा हुआ है तुम्हारा..."

लड़के के लौट जाने पर बोला, "कहो, यह लड़का पसंद है ? यह मेरा रिश्ते का भांजा है रमेश. अपनी दूकान है, कोई बुरी आदत नही. घर में सिर्फ़ मां है."

हरिहर को लगा, जैसे घर बैठे गंगा आयी. क्या कहे. शिबू कहता रहा, "अब देर न करो, इसी लगन में शादी होनी चाहिए. दान-दहेज की भी झंझट नही, ऊपरी ख़र्च की तुम चिंता न करो, वह मेरा रहेगा. लेकिन अब भवानी को ब्याह दो. बाप रे... लड़की है कि चंडी ! इतनी तेज़..."

पीछे ओट में बैठी कोयले तोड़ रही भवानी ने शिबू की बात सुनी. गालों पर हल्की लाली बिखर गयी...

"ज्ञान-कला केंद्र" परिसर,
आमगोला,
मुजफ्फरपुर-८४२००२.
फोन : ०६२१-२२४२६८२

सागर-सीपी

'मेरी प्रतिबद्धता जन और जीवन के प्रति है!'

- संतोष श्रीवास्तव

(कथा लेखिका संतोष श्रीवास्तव से युवा समीक्षक डॉ. अमिता पंड्या की '**कथाबिंब**' के लिए विशेष भेंटवार्ता)

● **अपनी पहली कहानी के प्रकाशन का आपके ऊपर क्या असर पड़ा ? परिचित साहित्यकारों ने उसे किस तरह से लिया?**

पहली रचना सन १९६१ में १७ साल की उम्र में उन दिनों जबलपुर से निकलने वाली लघुपत्रिका 'कृति परिचय' में छपी थी. हफ्ते भर बाद इलाहाबाद से अमृतरायजी ने लिखा था 'तुम लिखती हो इसमें आश्चर्य नहीं, पर इतना अच्छा लिखती हो... बधाई ! तुमसे और भी प्रौढ़ लेखन की उम्मीद है.' अमरीका से विजय चौहान ने लिखा -"मेरी छोटी-सी बहन आज मेरे कंधों से ऊपर जा रही है, ईश्वर तुम्हारे लेखन के क़द को और बढ़ाये."

● **अमृतराय जी, विजय चौहान जी तथा जबलपुर के साहित्यकारों के बीच आपका लेखन पला-बढ़ा... बहुत कुछ सीखा भी होगा आपने इन सबसे ? क्या आप मानती हैं कि इन सबका आपके लेखन पर प्रभाव पड़ा ?**

मेरे बड़े भाई कवि, लेखक, संपादक स्व. विजय वर्मा का सुभद्रा कुमारी चौहान के घर से ताल्लुक रहा. धीरे-धीरे हमारा पूरा परिवार उनसे घरेलू घनिष्ठता में बदल गया. चूंकि अम्मा, बाबूजी भी क्रांतिकारी समाजसेवी थे तो सुभद्रा कुमारी चौहान से उनकी मित्रता थी. उनके मंझले बेटे विजय चौहान भी कथाकार थे बस, इसी तरह संबंध प्रगाढ़ होते गये. यह सही है कि इन सभी साहित्यकारों के साथ उठने बैठने में मेरा लेखन संवरा लेकिन मैंने अपने लेखन की मौलिकता बरकरार रखी. मेरी अपनी शैली है.

● **आपने बताया कि सत्रह साल की उम्र में आपकी पहली कहानी छपी. लेकिन आमतौर पर इस उम्र में लड़कियां कुछ और ही सपने देखती हैं. क्या आपने वो सपने नहीं देखे ?**

हां... वह उम्र होती ही खतरनाक है. मेरी हमउम्र लड़कियां इश्क़ के चर्चे करतीं... सिल्क, शिफॉन, किमख़ाब, गरारे, शरारे में डूबी रहतीं... मेंहदी रचातीं, फिल्मी गाने गुनगुनातीं, दुल्हन बनने के ख़्वाब देखतीं, तकियों के गिलाफ़ पर बेल बूटे काढ़तीं. मैं कभी अपने को इस सबमें नहीं पाती. मेरे अंदर एक खौलता दरिया था जिसका उबाल मुझे चैन न लेने देता...दिन में आंखों के सामने कोर्स की किताबें होतीं... रात दो-दो बजे तक काग़ज़ कलम थामे दुनिया जहान को टटोलने की कोशिश शब्दों के ज़रिये करती. इस जद्दोजहद में कब शब्द अपने गूढ़ अर्थों सहित मेरे दोस्त बन गये पता ही नहीं चला. मैंने इस दोस्ती के ज़रिये झूठी मान्यताओं, थोथी परंपराओं, अंधविश्वासों को ललकारा और किसी भी अवरोध की परवाह नहीं की. मैं इस सबके खिलाफ दृढ़ता से खड़ी हुई और इस खड़े होने की ज़िद में कच्ची उम्र का मोहक बसंत पंखुड़ी पंखुड़ी बिखर गया और मैंने उसे बिखर जाने दिया.

● **अपने आसपास के परिवेश के विरुद्ध जाने का हौसला, आम जिंदगी से हटकर कुछ कर दिखाने की चाह...इस जद्दोजहद में आप कितनी खरी उतरीं ?**

मेरा जीवन हादसों से भरा है. लेकिन हालात से डगमगा जाना या आंसू बहाकर गम गलत करना मेरी फितरत नहीं. मैं तमाम हादसों के बीच पूरे मनोबल से खड़ी हूं. आम ज़िंदगी मुझे रास नहीं आती फिर ख़ास चाहे कितनी भी तकलीफ़ देह...बार-बार टूट कर बिखर जाने वाली मनोदशा वाली क्यों न हो. मैं घबराती नहीं, परवाह नहीं करती. ज़िंदगी से यही गुज़ारिश है कि...

तू पंख ले ले मुझे सिर्फ हौसला दे दे,
फिर आंधियों को मेरा नाम और पता दे दे ।

● **अन्य कलाओं - नृत्य, चित्रकला की ओर आपका रुझान कब, कैसे जागा ?**

राधा का चारित्र मुझे बहुत प्रभावित करता था. द्वारका प्रसाद मिश्र द्वारा रचित 'कृष्णायन' और जयदेव के 'गीत गोविंद' की राधा ने मुझे आलोड़ित किया और राधा के चरित्र को नृत्य के द्वारा मंच पर प्रस्तुत करने की साध बलवती होती गयी. मैंने बाकायदा नृत्य की शिक्षा लेनी शुरू कर दी और आपको ताज्जुब होगा कि नृत्य गुरु नरसप्पाजी के कठोर अनुशासन में मात्र एक वर्ष के कठिन अभ्यास के बल पर हमने 'कृष्णायन' का सफलता पूर्वक मंचन कर दिखाया... उसके छः महीने बाद 'गीत गोविंद' का भी मंचन हुआ. नृत्य के नशे के साथ-साथ चित्रकला का नशा भी चढ़ा. मेरी कोलाज कलाकृतियां जो नारियल के रेशों, रेत, सीप, घोंघे और सूखे घास-पात की सहायता से आकार पातीं, इतनी तो बन ही चुकी थीं कि एक प्रदर्शनी हो सकती थी. लेकिन प्रदर्शनी कभी हुई नहीं...कुछ चित्र आज भी अतीत के संदूक में बंद हैं. बाद में इन दोनों कलाओं से मेरा नाता टूट गया.

प्रकाशन : कथा संग्रह - बहके बसंत तुम, बहते ग्लेशियर, अपना अपना नर्क, एक मुट्ठी आकाश.
उपन्यास - मालवगढ़ की मालविका, दबे पांव प्यार, टेम्स से जमुना तक, हवा मे बंद मुट्ठियां (संयुक्त उपन्यास), फागुन का मन (ललित निबंध संग्रह), नहीं अब और नहीं (संपादित कथा संग्रह)

विशेष : १) मराठी, ओड़िया, गुजराती, अंग्रेजी, बंगाली, तमिल एवं उर्दू में रचनाएं अनूदित. २) कहानी 'सैलाब' तथा 'गलत पता', पर बनी टेलीफ़िल्म का दूरदर्शन के मेट्रो चैनल से प्रसारण. ३) आकाशवाणी, विविध भारती मुंबई से रचनाओ का प्रसारण १९७७ से जारी. ४) मसि कागद, संझा लोकस्वामी के साहित्य एवं नारी विशेषांकों का संपादन.

पुरस्कार : १) कालिदास पुरस्कार (१९७५), २) महाराष्ट्र राज्य साहित्य अकादमी पुरस्कार (१९९७), ३) साहित्य शिरोमणि पुरस्कार (२००१), ४) प्रियदर्शनी अकादमी पुरस्कार (२००४),५) महाराष्ट्र दलित साहित्य अकादमी पुरस्कार (२००४), ६) वसंतराव नाईक लाईफ़ टाइम एचीवमेंट अवार्ड (२००४), ७) 'कथाबिंब' पुरस्कार (२००४).

संप्रति : प्रधान अध्यापिका, स्वतंत्र पत्रकारिता.

● **अंततः आपने लेखन को चुना. पत्रकारिता में आपका गहरा दखल रहा. मार्क्सवादी विचारधारा ने क्या आपके विधा चयन में मदद की या और कोई वजह ?**

मैंने मार्क्स को पढ़ा है लेकिन मैं स्वतंत्र विचारधारा की हूं. बाबूजी और विजय भाई मार्क्सवादी थे. मैं इस वाद को समझने के प्रयास मे मार्क्स, लेनिन, इंगल्स, यशपाल, राहुल सांकृत्यायन को पढ़ रही थी और चकित थी बाबूजी के दर्शनशास्त्र और मार्क्सवाद की किताबो के लेखन पर. कार्ल मार्क्स को लेकर उनके मन में कुछ विवाद भी रहे पर वे यह कहने से नहीं चूकते थे कि जीवन की सबसे सही व्याख्या मार्क्स ने ही की है. वे कर्मकांड के सख़्त विरोधी थे. वे मतवाद को, संप्रदाय को उथली मानसिकता मानते थे. मेरे मन में उनके विचारों ने आग भड़का दी. मेरी राह डगमगाने लगी. क्या करूं ? किस राह जाऊं ? नृत्य या चित्रकला या नौकरी या लेखन पत्रकारिता...कुछ तो निर्णय लेना होगा. इस तरह तो मैं अपने अंदर की आग के साथ न्याय नहीं कर पाऊंगी. सो लेखन और पत्रकारिता को चुना... क़लम से बढ़कर अपने उबाल को शांत करने का और कोई ज़रिया भी तो नहीं. इमर्जेंसी के दौरान मैं बड़े कड़वे अनुभवों से गुज़री. जबलपुर के जनवादी आंदोलन से जुड़े कई लेखक पत्रकार सलाखों के पीछे कर दिये गये, कई भूमिगत हो गये. धर्मवीर भारती ने मौका देख 'पहल' के विरुद्ध मुहिम चलाई थी. दस अंकों मे कुछ मीडियाकर्स से उसके विरुद्ध लिखवाया था. राजनैतिक घेराबंदी की थी. बाबूजी ने तमाम संदेहास्पद किताबें जला डाली थी. कलकत्ते में भी एस. पी. के संपादन मे निकलने वाले 'रविवार' की उन प्रतियों को जलाया था जिसमें संजय गांधी और इंदिरा गांधी से संबंधित सामग्री थी. मेरे लिए यह सब एक ज्वलंत प्रश्न बन मुंह उठाने लगा. इन घटनाओं ने भी मेरे विधा चयन में मदद की.

● **पत्रकारिता के लिए आप जबलपुर में होमसाइंस कॉलेज में लगी अपनी लेक्चररशिप छोड़कर मुंबई आ गयीं.... इतना कड़ा कदम आपने मात्र पत्रकारिता के लिए उठाया ?**

पत्रकारिता तो करनी ही थी और मैं एक नयी ज़मीन की तलाश में थी. उन्हीं दिनों एस. पी. कलकत्ता से मुंबई धर्मयुग मे बतौर पत्रकार आये. उन्होने विजय भाई को भी अपनी योग्यता के लिए उचित प्लेटफॉर्म मिलेगा ऐसी सलाह देकर मुंबई बुला लिया. पर वे यह नहीं चाहते थे कि मैं अपनी लगी लगायी नौकरी छोड़कर मुंबई आऊं. मुझ पर तो पत्रकारिता का नशा चढ़ा था. मैं तमाम अव्यवस्था के खिलाफ़ हल्ला बोलना चाहती थी. सो मैं मुंबई आ गयी. काम भी मुझे बहुत मिला. डेस्कवर्क मैं करना नहीं चाहती थी, फ्री लांस ही किया. नवभारत टाइम्स मे मैं बदस्तूर लिखने लगी. आर. टी. वी. सी. मे कई कमर्शिअल कार्यक्रम लिखे जो रेडियो, टी.वी. पर प्रसारित होते थे. लिटाज़ में कई जिंगल लिखे. धर्मयुग मे 'अंतरंग' स्तंभ दो साल तक लिखा. नवभारत टाइम्स मे 'मानुषी' स्तंभ तीन साल तक लिखा. 'संझा लोकस्वामी' में दो वर्षों तक साहित्य का पन्ना संपादित करती रही. ललित पहवा ने 'मेरी सहेली' मे संपादक के पद का ऑफ़र दिया. पर उसका कलेवर मेरे मिज़ाज़ के खिलाफ था सो इंकार कर दिया. 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' और 'वीर अर्जुन' अखबार की मैं मुंबई मे ब्यूरो चीफ़ रही.

● **नारी मुक्ति के लिए आप अपने लेखों के द्वारा संघर्ष करती रहीं. ज़ाहिर है स्वयं नारी होने के नाते कमोबेश उन अनुभवों से गुज़री होंगी ?**

पिछले आठ वर्षों से मैं 'समरलोक' मे 'अंगना' स्तंभ लिख रही हूं जो औरत की तमाम समस्याओ, सफलताओं, विफलताओं

पर आधारित रहता है. यह स्तंभ बहुत अधिक लोकप्रिय हुआ. मैं मेहनत भी बहुत करती हूं इस स्तंभ के लिए. मैं आंकड़े जुटाती, ज़रूर हूं पर अपने लेख मे आंकड़ो का ज़िक्र नहीं करती क्योंकि उससे मौलिकता नष्ट होती है. मीडियाकर्मी महिलाओ, जेलों मे क़ैद विचाराधीन क़ैदी महिलओं, झोपड़पट्टियो में शराबी पति के जुल्म सहती महिलाओं और ऊंचे तबकों में 'किटी पार्टी', बड़े-बड़े मॉल में शॉपिंग करती अमीरज़ादियों के अंदरूनी हालात को मैंने करीब से देखा, समझा और लिखा. यही मेरा संघर्ष है औरत होने का और औरत के लिए कार्य करने का. वर्ष २००२ में दिल्ली में समाज कल्याण बोर्ड एवं वुमेन नेटवर्क लिमिटेड की ओर से महिला पत्रकारों का राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया गया था जिसमें महाराष्ट्र की ओर से मैंने प्रतिनिधित्व किया था, एक अकेली हिंदी पत्रकार के रूप मे.

● **आदिवासी महिलाओं के लिए भी आपने बहुत कुछ किया. अंडमान-निकोबार जाकर आपने नज़दीकी से जनजातियों को देखा, परखा. आपको क्या लगता है उनके सुधार के लिए सरकार कुछ कर पा रही है ?**

आदिवासी महिलाओं पर मैं बहुत होमवर्क करती हूं. दरअसल आदिवासी क्षेत्रों का दौरा करके ही मैंने गहराई से उनके बारे में सोचा. अंडमान-निकोबार द्वीप समूह में कई जनजातियां निवास करती हैं. ज़ारवा जनजाति की औरतें पेड़ की छाल और पत्तों से तन ढकती हैं. पीठ पर बेंत से बनी टोकरी बंधी होती है जिसमें या तो बच्चा होता है या कंद, मूल, फल. यहां की औरतों के लिए उनकी अपनी कानूनी परंपराएं हैं जिसमें औरतों को आज़ादी नाम मात्र को नहीं है, वही पुरुष प्रधान कबीला है. यही हाल शोंपेन, सेंटिनल, ओंगी आदि जनजातियों का है. प्रशासन ने इनके लिए बहुत कुछ किया है लेकिन उस सीमा तक ही जहां तक इनकी वास्तविक ज़िंदगी न बदले. क्योंकि ये आदिवासी ही पर्यावरण के असली संरक्षक हैं और हमारी सभ्यता, संस्कृति के परिचायक भी.

● **बल्गारिया से आयी छात्रा डोरा जो उड़ीसा की आदिवासी महिलाओं पर शोध कर रही थी और महाराष्ट्र सरकार ने आपको उसका कोऑर्डिनेटर नियुक्त किया था... बड़े रोचक अनुभव रहे होंगे आपके ?**

डोरा बल्गारिया निवासी होकर भी ऐसी हिंदी बोलती थी कि मैं हैरत मे पड़ जाती थी. उसका साथी आरसोव भी हिंदी का बेहतरीन विद्वान था. डोरा के साथ हमने उड़ीसा के जिन आदिवासी क्षेत्रों का दौरा किया वे आज की दुनिया के लगते ही नहीं, भूत, प्रेत, डायन, चुड़ैल की मान्यता वाले इन गांवों में आज भी बाटा पद्धति है... चावल दो, बदले में शक्कर-गुड़ लो. रुपिया चलता ही नहीं है वहां. मेरे लिए तो उतने दिन कुछ जादुई दिनों की तरह बीते. लगा जैसे एक अलग ही दुनिया में आ गयी हूं. एक ऐसी दुनिया जहां शहरों की राजनीति का ज़हर नहीं फैल पाया है. सही अर्थों में प्रकृतिपुत्र हैं ये. विदेशी छात्रों के बीच कोऑर्डिनेटर के पद पर मैंने बरसों काम किया. महाराष्ट्र सरकार ने मुझे इन कामों के लिए वर्ष २००५ में गवर्नर के हाथों राजभवन में 'वसंतराव नाइक लाइफ़ टाइम अचीव्हमेंट अवार्ड' दिया जो मेरे जीवन की एक बड़ी उपलब्धि है.

● **आप किसी साहित्यिक खेमे या वाद से न जुड़कर लेखन के प्रति सकारात्मक रवैया अपनाये हैं. यह कैसे संभव हुआ ?**

साहित्य में अमरबेल की तरह छाये खेमे, वाद के झमेलों से मैं कोसों दूर हूं. मार्क्सवाद ने प्रभावित ज़रूर किया पर मेरी प्रतिबद्धता जन और जीवन के प्रति है. मैं मानती हूं कि लेखन उसके संग-संग चलने वाला एक सफ़र है और हमारी पिछली पीढ़ियां और आने वाली पीढ़ियां मेरी हमसफ़र. मैं तमाम वैज्ञानिक दुरुपयोगों, भूमंडलीकरण, बाज़ारवाद, छिछली राजनीति, दृश्य-श्रव्य मीडिया, इंटरनेट और साहित्य की चुनौतियों के सामने ज़िरह बख़्तर बांधकर खड़ी हूं. मेरी लड़ाई उस व्यवस्था के खिलाफ़ है जो अंडरवर्ल्ड, ड्रग लीडरों, माफ़िया, आतंकवादियों और नक्सलवाद को तो ख़त्म नहीं कर पायी लेकिन इस विराट समाज में उन मुट्ठी भर लोगों की जीवनशैली ज़रूर बेच रही है कि पिज़्ज़ा खाओ, बर्गर खाओ, ठंडा मतलब... ?? पिओ और योगा क्लासेज़, लाफिंग क्लब जॉइन करो, क्योंकि हम तुम्हारी पाचनशक्ति, तुम्हारी हंसी छीन रहे हैं.

● **कितना ही ऐसा साहित्यकार वर्ग है, पत्रकार वर्ग है जो पूंजीपतियों सेठों से जुड़ा है. प्रकाशकों का रवैया भी असंतोष जनक है. लेखक लेखन के दौरान इन सब गतिरोधों से गुज़रता है, आप भी गुज़री होंगी ?**

आपने दुखती रग पर हाथ रखा है. एक ईमानदार पत्रकार, लेखक इन गतिरोधों को महसूस करता है. साहित्य में राजनीति की घुसपैठ, पूंजीवाद की घुसपैठ, लेखक आवाज़ उठाता है इसके खिलाफ़ लेकिन कुछ प्रकाशन की भड़ांस वाले लेखक स्वयं चाकरी करते हैं पूंजीपतियों की अपनी किताब के प्रकाशन की, विमोचन की. साहित्य का क ख ग भी नहीं जानने वाले ये लक्ष्मीपुत्र आज पुज रहे हैं. किताब में चार चार पृष्ठें पर इनका स्तुतिगान, फोटो रहती है. ऐसे लेखक, पत्रकार रिश्वतखोरी के ख़िलाफ़ कलम उठाते हैं परंतु चाहते हैं मुफ़्त इलाज, मुफ़्त दवाएं, मुफ़्त विदेश भ्रमण, मुफ़्त घर का रिनोवेशन. ऐसी दोमुंही राजनीति पर मैंने खुल कर लिखा है और विरोध सहा है कि तुम भी तो अपनी संस्था विजय वर्मा मेमोरियल ट्रस्ट के लिए पूंजीपति का सहारा पा चुकी हो. हां, यह सही है पर वक़्त रहते हम सम्हल गये.

जब हमने जाना कि पूंजीपति तो हमें अपने इशारों पर नचा रहा है, तो बेइज़्ज़त होकर तो संस्था चलानी नहीं है, अपने दोस्तों को तो नाराज़ करना नहीं है, अपने उसूलों की रक्षा करनी है. लिहाज़ा हमने उनसे किनारा कर लिया. अब हम पूरे मान सम्मान सहित ट्रस्ट के उद्देश्यों की रक्षा कर रहे हैं.

● **आपने स्तंभ लेखन भी किया और अब समीक्षा की दुनिया में भी जगह बना रही हैं आप ?**

मैंने स्तंभ लेखन का ज़िक्र किया न ! समीक्षा की दुनिया में मैं अपने दोस्तों की प्रेरणा से आयी. मेरी छिटपुट प्रकाशित समीक्षाओं ने खासी जगह बना ली. फिर मैंने इस दिशा में मेहनत करनी शुरू कर दी. सबसे अधिक प्रशंसा डॉ. सुशीला गुप्ता के संपादन में प्रकाशित पुस्तक 'प्रेमचंद का रचना संसार' पुनर्मूल्यांकन की समीक्षा की हुई. न जाने कितने पत्र आये. सुशीला गुप्ता जी ने एक ही अंक (हिंदुस्तानी ज़बान) में आठ पत्र छापकर कहा कि 'बाकी तुम खुद आकर पढ़ लो.' यह मेरी एक बड़ी उपलब्धि थी. अब तो बाकायदा सभी स्तरीय पत्रिकाओं में मेरी लिखी समीक्षाएं छप रही हैं.

● **आप लघुपत्रिकाओं में ख़ूब छपीं. इसके पीछे कुछ ख़ास वजह थी ?**

लघु पत्रिकाओं में छपने का मंत्र ज्ञानरंजन दादा से मिला. जब हमारी बैठकें होतीं तो वे कहते कि लघुपत्रिकाएं आम पाठकों की पहुंच में होती हैं तो यदि पाठकों तक पहुंचना है तो लघुपत्रिकाओं में छपो. बाद में मैंने महसूस किया कि जो कसाव, जो स्तरीयता लघुपत्रिकाओं में है वह बड़े बजट की व्यावसायिक पत्रिकाओं में नहीं. लिहाज़ा मेरा पाठक वर्ग खड़ा होता गया. कोई कहानी प्रकाशित होती तो अस्सी-अस्सी पत्र आते जो मेरी धरोहर बनते गये.

● **सती प्रथा के विरोध में लिखे आपके उपन्यास 'मालवगढ़ की मालविका' को जहां तीन-तीन पुरस्कारों से पुरस्कृत किया गया वहीं उसका एक अंश 'मंगल पांडे' नामक फिल्म में भी लिया गया जब पति की चिता पर ज़बरदस्ती ठेली गयी अमिषा पटेल को एक अंग्रेज घोड़े पर सवार हो हवा में गोलियां दागता आता है और उठाकर ले जाता है. फिर वह उससे प्यार करने लगता है. इस घटना की हुबहू नक़ल आपकी रज़ामंदी के न होने के बावजूद आपने आवाज़ नहीं उठायी ?**

उठायी थी... फिल्म राइटर्स एसोसिएशन से संपर्क किया था पर उनका कहना था पहले इसके सदस्य बनो तब हम आपके केस पर गौर करेंगे. सदस्यता शुल्क अधिक था...मैंने भी सोचा कि कुछ होनेवाला तो है नहीं. मंगल पांडे वैसे भी विवादों से घिरी फिल्म है... नाहक परेशानी कौन मोल ले. गांठ का पैसा जायेगा सो अलग

● **आपके लेखन पर एम. फिल. और पी-एच. डी. हुई है. बरसों पहले डॉ. अचला नागर ने भी आपके समग्र लेखन पर एक चैप्टर लिखकर अपनी थीसिस में शामिल किया था ? इससे जुड़ा कोई रोचक प्रसंग याद आता है आपको ?**

एस. एन. डी. टी. कॉलेज में डॉ. माधुरी छेड़ा के मार्गदर्शन में असम की छात्रा मोनिषा ने मेरे संग्रह 'बहके बसंत तुम' पर एम. फिल. किया. लेकिन इससे बहुत पहले डॉ. अचला नागर ने अपनी थीसिस में मेरे समग्र लेखन से जुड़ा एक चैप्टर लिखकर शामिल किया था. तब मैं जबलपुर में थी और अचला जी के साथ पत्रों, फोन द्वारा ही संपर्क हो पाता था. जब मैं मुंबई आयी तो एक दिन धर्मयुग के कार्यालय में उनसे मुलाकात हुई. तब उन्होंने थीसिस वाली बात और मेरी कुछ ख़ास कहानियों के संवाद बोलकर बताये. उसके बाद हम जो गले मिले तो हमेशा के लिए अच्छे दोस्त बन गये.

● **आप अंतर्राष्ट्रीय पत्रकार मित्रता संघ की सदस्य चुनी गयीं और इसी सिलसिले में कई देशों की यात्राएं कीं... वहां हिंदी का कैसा माहौल है ?**

विदेशों में हिंदी की स्थिति बेहद सुदृढ़ है. वहां जो भारतीय बसे हैं वे हमसे अधिक हिंदी से जुड़े हैं, हिंदी के लिए कार्य कर रहे हैं. यह स्थिति मैंने जर्मनी, लंदन, रोम, पेरिस, मॉरीशस में अधिक देखी. वहां के पुस्तकालयों में वेद, उपनिषद, महाकाव्य, पुराण, गीता, सूर, मीरा, तुलसी सब उपलब्ध हैं. संस्कृत साहित्य में छिपी हज़ारों वर्ष पुरानी सभ्यता और संस्कृति को विश्व रंगमंच पर जर्मन विद्वान फ्रेडरिख वान श्लेगेल, अडोल्फ डब्ल्यू श्लेगेल, विल्हेम फॉन हाबोल्ट आदि ने लाकर खड़ा किया. मॉरीशस में तो हिंदी का अकूत ख़ज़ाना है... लगता ही नहीं कि मॉरीशस भारत से अलग कोई देश है. इस वर्ष आठवां विश्व हिंदी सम्मेलन न्यूयॉर्क में हुआ. लेकिन अफसोस कि भारत सरकार द्वारा पंजीकृत और भारतीय विद्याभवन न्यूयॉर्क (आयोजक) द्वारा आमंत्रित साहित्यकारों को अमरीका का वीज़ा नहीं दिया गया. यह भारत सरकार की तौहीन नहीं तो क्या है ? जब वीज़ा नहीं देना था तो न्यूयॉर्क में सम्मेलन आयोजित करने की स्वीकृति क्यों दी गयी. यह कैसा खिलवाड़ किया गया साहित्यकारों के साथ ?

● **आपके पसंदीदा लेखक कौन हैं ?**

प्रेमचंद, निर्मल वर्मा, प्रियंवदा, मैत्रेयी पुष्पा और एकदम युवा पीढ़ी में नीलाक्षी सिंह, महुआ माजी... लेकिन मैं लेखकों से बढ़कर उन लेखक संपादकों से अधिक प्रभावित हूं जो अपने जीवन की गाढ़ी कमाई और समय लगाकर साहित्यिक पत्रिका निकालते हैं और लेखकों को अपनी बात कहने के लिए मंच देते हैं. हमारी मुंबई से 'कथाबिंब' और 'प्रगतिशील आकल्प' ऐसी ही पत्रिकाएं हैं जो प्रकाशित हो रही हैं. कोई आसानी से एक विज्ञापन तक

नही देता... यह सबसे बड़ी ट्रेजेडी है. लेखक तक इन पत्रिकाओं को मुफ्त में पाना चाहता है जबकि पूंजीपतियों द्वारा प्रकाशित पत्रिका वह ख़रीदकर पढ़ता है.

● **किन पुस्तकों ने सबसे अधिक प्रभावित किया आपको ?**

बचपन में चंद्रकांता संतति ने... आज विदेशी लेखिका की श्रृंखलाबद्ध पुस्तक 'हैरी पॉटर' पर करोड़ों डॉलर कमाये जा रहे हैं जबकि चंद्रकांता संतति के सभी खंड अधिक वज़नदार हैं. पिछले दिनों शिवाजी सावंत की पुस्तक 'मृत्युंजय' पढ़ी. क्या ख़ूब लिखा है. पाकिस्तानी लेखिकाएं बहुत बेहतर लिख रही हैं. मैत्रेयी पुष्पा की 'अल्मा कबूतरी' प्रभा खेतान की 'पीली आंधी', प्रियंवद की 'परछाईं नाच' अच्छी पुस्तकें हैं. ज़रूरी नहीं कि लेखक की हर रचना अच्छी हो.

● **पुत्र हेमंत की अकाल मृत्यु को अब तक आप स्वीकार कर चुकी होंगी ?**

नहीं, हरगिज़ नहीं. गेटे ने कहा था, 'जीवन का वृक्ष हमेशा हरा रहता है'. मेरे लिए हेमंत आज भी जीवित है, बल्कि मेरी स्मृतियों में सुरक्षित है. मैं उसकी बातों को, उसकी चीज़ों को हमेशा याद करती हूं... स्पंदित करती हैं उसकी यादें. मैं भाग्यशाली थी जो हेमंत जैसा सर्वगुण संपन्न बेटा मुझे मिला. वह कवि था, चित्रकार था. हमने उसकी सभी कविताओं और चित्रों का संग्रह 'मेरे रहते' नाम से प्रकाशित करवाया. प्रतिवर्ष उसकी स्मृति में विजय वर्मा मेमोरियल ट्रस्ट 'हेमंत स्मृति कविता सम्मान' किसी संभावनाशील युवा कवि को समारोहपूर्वक प्रदान करती है. हेमंत मेरा जीवन है. जब तक मैं हूं वह जीवित रहेगा ही.

● **आपने परंपरा से हटकर अपनी मां के अस्थिपुष्पों को एक पुत्र की तरह बनारस जाकर गंगा में प्रवाहित किया. इस विषय में किन विरोधों का सामना करना पड़ा ?**

विरोध कैसा ? हमारा ख़ानदान आरंभ से ही प्रगतिशील विचारों का रहा है और लड़के लड़की में कभी कोई भेद नहीं बरता गया. मैंने मां की इच्छा का सम्मान किया और बनारस के मणिकर्णिका घाट में स्वयं उनके अस्थि पुष्पों का विसर्जन किया. यह मेरे लिए ऐसी घटना थी जिसने मेरे अंदर अटूट आत्मविश्वास भरा. इसी आत्मबल के सहारे मैंने जीवन के तमाम हादसे सहे.

● **अब आप जीवन में नितांत अकेली हैं. यह अकेलापन आप सहजता से ले रही हैं या नियति के आगे सिर झुकाकर ?**

हां, अब चूंकि पति भी नहीं रहे सो नितांत अकेली तो हो गयी हूं. अकेलेपन की त्रासदी यह रही कि... इस उम्र में भी मुझसे इश्क लड़ाने को लोग लालायित रहे. नाम नहीं बताऊंगी पर तीन ऐसे प्रतिष्ठित साहित्यकारों के नाम हैं. मैंने ख़ुद को ख़ूब खंगाला तो पाया कि हेमंत की मृत्यु के बाद मैं पत्थर हो चुकी हूं ! अब मुझे किसी भी तरह की भावुकता पीड़ित नहीं करती सो मैंने ख़ुद को एक ऐसे कवच में क़ैद कर लिया है जहां किसी का भी प्रवेश वर्जित है. अब मैं हूं और अछोर फैला मेरा अकेलापन... सन्नाटा...बस, मुखर है तो मेरी क़लम.

७५/२ जॉय अपार्टमेंट, निकट लक्ष्मी नारायण मंदिर, जे. बी. नगर, अंधेरी (पूर्व), मुंबई - ४०० ०५९.
फोन : ९९६७६५११०७

लघुकथा

दंश

राजेंद्र निशेश

कल रात उसने अपनी कलाई की नस को चाकू से काटने का प्रयत्न किया ताकि जीवन-लीला समाप्त हो जाये. अपनी पत्नी गुरिंद्र कौर की मौत के बाद अपने बच्चों के साथ होते हुए भी वह अकेला महसूस कर रहा था. रिटायरमेंट से पूर्व ही उसने एक छोटा-सा मकान बनवा लिया था, जो उसकी पारिवारिक ज़रूरतों को पूरा करने के लिए एक तरह से काफी था. वह अपनी विवाहित ज़िंदगी से नाख़ुश नहीं था. तीन लड़कों और एक लड़की की शादी करके वह अपने आप को गंगा नहाया मान रहा था. दो लड़के अलग से रह रहे थे और लड़की अपने ससुराल में ख़ुश थी. लेकिन सब से छोटा लड़का अपनी पत्नी और दो बच्चों सहित उसके साथ ही रह रहे थे. जब तक गुरिंद्र कौर जीवित रही, उसकी हर तरह से देखभाल होती रही. गुरिंद्र कौर के स्वभाव का जादू था या लड़के को मकान सुख के साथ-साथ उसकी पेंशन का एक अच्छा ख़ासा भाग ख़र्च के तौर पर मिलना इसका कारण था, उसने कभी सोचा नहीं था. लेकिन गुरिंद कौर की मौत के बाद बेटे और बहू के तेवर बदलने लगे. उधर बुढ़ापे के कारण शरीर जवाब देने लगा था और इधर धीरे-धीरे उसकी देखभाल करने में कोताही बरती जाने लगी. यहां तक कि अब उसे रोटी वग़ैरह भी समय पर मिलनी बंद हो चुकी थी. वह उस फालतू समान की तरह बन गया था, जिससे सभी छुटकारा पाने की चाह रखते हैं. दूसरे बच्चों ने भी एक तरह से उससे मुख मोड़ लिया था. हाथ-पैर साथ दे रहे होते तो शायद वह कोई दूसरा जुगाड़ सोचता. लेकिन अब बेबसी का दंश झेलने के सिवाय कोई चारा नहीं बचा था.

लेकिन उसका यह प्रयत्न भी निष्फल रहा. बच्चों को समय पर पता चल गया और उन्होंने उल्टे पुलिस को इत्तला कर दी कि उसने आत्म-हत्या करने का प्रयत्न किया है. पुलिस वालों ने अब उसे अनुत्तरित सवालों के कठघरे में खड़ा कर दिया है !

२६९८, सेक्टर-४० सी, चंडीगढ़-१६००३६

डॉ. अमिता पंड्या
६४७/२, सेक्टर-७ बी, पुलिस चौकी रोड, गांधीनगर (गुज.)

वातायन

हिरोशिमा, नागासाकी से सबक

डॉ. अरविंद

आज से ६० से कुछ अधिक वर्ष पहले परमाणु बम बनाने की तकनीक मानव के हाथ लगी थी. प्रश्न यह उठा कि परमाणु बम का परीक्षण कहां किया जाये ? और यहीं से प्रारंभ हुआ अमरीकी आतंकवाद का घिनौना अध्याय. जापान को सबक सिखाने के लिए हिरोशिमा शहर के बीचोबीच सन १९४५ में, ६ अगस्त को सुबह ८ बज कर १५ मिनट पर परमाणु बम गिराया गयाऔर उसके कुछ घंटों बाद नागासाकी पर भी बम का विस्फोट किया गया. किंतु अपनी दृढ़ इच्छा शक्ति के बल पर जापान कुछ ही सालों में और मजबूती से उठ खड़ा हुआ. जिस स्थान पर बम विस्फोट हुआ था वहां एक काफी बड़े भू-भाग में "पीस मेमोरियल म्यूजियम" बनाया गया है .दृश्य-श्रव्य माध्यमों से बड़े पैमाने पर उस दर्दनाक घटना की याद प्रत्येक दिन पर्यटकों के सम्मुख प्रस्तुत की जाती है जिससे लोग न्यूक्लीय विध्वंस की विभीषिका देखें और सबक लें. जो लोग विस्फोट से उत्पन्न विकिरण से प्रभावित हुए उन्हें जापानी में *"हिबाकुशा"* कहते हैं. वर्ष २००६, ६अगस्त के दिन म्यूजियम के प्रांगण में एक सभा के बाद हिरोशिमा के मेयर श्री तदातोशी अकिबा ने एक घोषणा-पत्र ज्ञारी किया. यह घोषणा-पत्र एक ऐतिहासिक दस्तावेज है -

"उस दिन विकिरण और उच्च ताप के संयुक्त प्रभाव ने पृथ्वी पर नर्क पैदा कर दिया था. उसके बावजूद, ६१ बरसों बाद आज भी न्यूक्लीय अस्त्रों की दौड़ में विश्व के अनेक देश लगे हुए हैं और यह संख्या बढ़ती ही जा रही है. आज पूरी मानवता एक दोराहे पर खड़ी है. सहज ही प्रश्न उठता है कि कि क्या सभी राष्ट्र न्यूक्लीय अस्त्रों के गुलाम बन जायेंगे या फिर वे कभी इनसे मुक्त हो पायेंगे ? शहरों-कस्बों में रहने वाले, विशेष कर छोटे नादान बच्चों को क्या इसी तरह न्यूक्लीय अस्त्रों का लक्ष्य बनाया जायेगा ? उत्तर एकदम स्पष्ट है. पिछले ६१ वर्षों ने हमें मुक्ति का मार्ग दिखाया है. नर्क में रहने की विवशता ने जिसके लिए, वे क़तई जिम्मेदार नहीं थे, *"हिबाकुशा"* को जीवन और भविष्य की ओर देखना सिखाया. जख्मों तथा शरीर और मस्तिष्क की अन्य जानलेवा बीमारियों के साथ जीवित रहते हुए उन्होंने निरंतरअपने अनुभवों को बताने की कोशिश की है. दया, अस्पर्शता और झूठी सहानुभूति के प्रति न झुकते हुए इन्होंने सदैव चेताया है कि - जितना हमने सहा है, उस तरह और कोई न सहे. इन लोगों की आवाज़ें पूरी दुनिया के बुद्धिजीवियों ने सुनी हैं और आज ये एक शक्तिशाली कोरस के रूप में उभर कर आ रही हैं.

अब मुद्दा यही है कि आज न्यूक्लीय अस्त्रों को नष्ट करने के अलावा किसी की और कोई भूमिका हो ही नहीं सकती. लेकिन इसके बावजूद विश्व के राजनीतिज्ञ इन आवाज़ों की अनसुनी करते आ रहे हैं. अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने दस वर्ष पूर्व भी इसी प्रकार का परामर्श दिया था जिसे अब तक एक काफी प्रभावी औज़ार के रूप में सत्य के पथ का मार्गदर्शक बन जाना चाहिए था. न्यायालय का निर्णय था कि न्यूक्लीय अस्त्रों से उत्पन्न खतरा अंतर्राष्ट्रीय नियमों के विरुद्ध है और घोषित किया कि सब पक्षों को विश्वास में लेते हुए यह दायित्व बनता है कि न्यूक्लीय अप्रसार के सभी पहलुओं पर अंतिम रूप से विचार कर प्रभावी अंतर्राष्ट्रीय नियंत्रण किया जाना चाहिए. लेकिन दुर्भाग्यवश, पिछले दस वर्षों में, बहुत से देशों और लोगों ने अपने इस दायित्व को गंभीरता से नहीं लिया. इस बात को समझते हुए कि इस दिशा में अधिक कुछ नहीं हो पाया, हिरोशिमा के मेयर के साथ समस्त विश्व के १४०३ *"शांति के मेयरों"* ने *"कैंपेन"* का दूसरा चरण प्रारंभ किया है. अमरीका की मेयरों की कॉन्फ्रेंस जो कि अमरीका के ११३९ शहरों का प्रतिनिधित्व करती है, इस अभियान का नेतृत्व कर रही है.

विश्व के सभी देशों और नागरिकों का कर्तव्य है कि *"खोयी हुई भेड़"* को बंधनमुक्त कर दें और इस प्रकार विश्व को न्यूक्लीय अस्त्रों से विमुक्त कर दें. समय आ गया है कि हम सभी उठें और जागृत हों तथा एक बलबती आग्नेय इच्छाशक्ति से चट्टान को भेद दें.

मैं जापानी सरकार का आह्वान करता हूं कि हिबाकुशा और अन्य सभी नागरिकों की ओर से एक जबरदस्त विश्वव्यापी अभियान चलायें जिसमें प्रभावशाली ढंग से मांग की जाये कि न्यूक्लीय शक्तियां आपस में एक दूसरे का विश्वास प्राप्त कर न्यूक्लीय अप्रसार की ओर तेज़ी से अग्रसर हों."

भारत हमेशा से शांति का पुजारी रहा है. क्या ऊर्जा की अपनी आवश्यकता पूरी करने के लिए हमारे पास न्यूक्लीय विद्युत ही एक मात्र विकल्प रह गया है. हिरोशिमा-नागासाकी के परमाणु विस्फोटों के परिणाम हमारी आंखों को खोलने के लिए क्या पर्याप्त नहीं हैं ? आतंकवादी गतिविधियों के चलते इतनी बड़ी संख्या में न्यूक्लीय रिएक्टरों को लगाना बहुत भीषण खतरों को निमंत्रण देना है. हमारे लिए यही हिरोशिमा-नागासाकी का सबक है.

ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई-४०० ०८८.

पुस्तक समीक्षा

जीवन के शिवम् पक्ष की पैरवी करती कहानियां

फरिश्ता (कहानी संग्रह) : **अंजना 'सवि'**,
प्रकाशक : आशीष प्रकाशन, बालाघाट (म. प्र.)

मू. : १५०/- रु.

हिंदी कहानी के वर्तमान परिदृश्य मे मध्यप्रदेश की महिला कथाकारो का अवदान काफी उज्ज्वल और गर्व करने योग्य है. इस संदर्भ में इस बात को विशेष रूप से रेखांकित किया जा सकता है कि हिंदी की राष्ट्रीय स्तर की शीर्षस्थ दो महिला कथाकार मध्यप्रदेश की ही हैं. ऐसा लगता है - कथा लेखन के मामले मे मध्यप्रदेश की भूमि में कुछ खास अनुकूलताएं विद्यमान हैं. राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी कथा लेखन को समृद्ध बनाने वाली पद्मश्री मेहरुन्निसा परवेज और मालती जोशी इसी प्रदेश की हैं. इस गरिमापूर्ण पंक्ति में पुरानी पीढ़ी की महिला कथाकारो मे ममता कालिया, मंगला रामचंद्रन, कृष्णा अग्निहोत्री और लीला रूपायन आदि खड़ी हैं, जिनकी कहानियो ने यह प्रमाणित किया है कि कथा लेखन के क्षेत्र मे महिलाएं पुरुष कथाकारो से किसी भी कदर कम नही हैं. कहानियों मे जीवन की मधुरता का जो अभाव पुरुष कथाकारो की कहानियों में खटकता रहा है, उसकी पूर्ति इन महिला कथाकारो ने बखूबी की है. इन दिनो मध्य प्रदेश में कुछ लेखिकाएं हिंदी कथा-लेखन के क्षेत्र में अच्छी मेहनत कर रही हैं. इनमें डॉ. उर्मिला शिरीष (भोपाल), डॉ. स्वाति तिवारी (इंदौर) और अंजना 'सवि' (भोपाल) प्रमुख हैं.

अंजना 'सवि' वैसे तो गीत, कविता और ग़ज़लो के लिए भी पहचानी जाती हैं, लेकिन मुझे उनमें कहानी लेखन की क्षमताएं अपेक्षाकृत अधिक प्रखर दिखती हैं. उनकी कहानियों से रूबरू होना, इस बात का अहसास कराता है कि अंजना जी कहानियां लिखती नही, अपितु कहानियां कहती हैं. मैं ऐसा मानता हूं जिन कहानियों में "कहन" तत्व का प्रावल्य होता है, वस्तुतः ऐसी ही रचनाओं को कहानी कहलाने का नैसर्गिक अधिकार होना चाहिए. कई प्रतिकूलताओं के बावजूद भी जीवन में रस की कहीं कोई कमी नहीं है, ज़रूरत है तो उसको तलाशने की. अंजना 'सवि' अपनी लघु, मझौले और बड़े आकार की कहानियो के माध्यम से इन रसो की खोज कर रही हैं और अपने पाठको तक पहुंचा रही हैं, यह प्रसन्नता की बात है.

ग्रामीण संस्कारो के बीच पली-बढ़ी और महानगर में आकर जिनकी सृजन-प्रतिभा का प्रस्फुटन हुआ, ऐसी अंजना 'सवि' ने पिछले कुछ महीनों से रचना कर्म को एक बार फिर गंभीरता से लेना शुरू किया है.

'फरिश्ता' कहानी संग्रह की कहानियों की चर्चा करने से पूर्व यह प्रासंगिक होगा कि हिंदी कहानी के परिप्रेक्ष्य में कुछ आधारभूत बातों की विवेचना कर ली जाये. साहित्य की कोई भी विधा क्यों न हो, उसके सृजन मे समाज सापेक्षता होना आवश्यक है. समाज से विलग होकर अथवा कट कर कोई भी साहित्यिक सृजन अपने मूल उद्देश्यों के साथ न्याय नही कर सकता. 'समाज सापेक्षता' से मेरा अभिप्राय साहित्य में समाज के हित के प्रति प्रखर प्रतिबद्धता और सच्ची निष्ठा से है. जिस रचना के माध्यम से समाज को किसी न किसी रूप में प्रेरणा-प्रकाश, दूसरे शब्दो मे बल नही मिलता, वह दिमागी कसरत तो हो सकती है, लेकिन साहित्यिक रचना कदापि नही, क्योंकि रचना के साथ "साहित्य" शब्द जुड़ते ही उसको लेकर सत्यं शिवं सुंदरम के रूप मे परिभाषित अपेक्षाएं स्वतः जुड़ जाती हैं. किसी भी साहित्यिक विधा की जिस रचना मे शिल्प-वैचित्र्य अथवा शिल्प चमत्कार के नाम पर इन तीनों बुनियादी अपेक्षाओं की उपेक्षा होगी, उसमें निहित सृजनकर्म सर्जक को आत्म संतोष नहीं दे सकता. दूसरी बात, हिंदी साहित्य के किसी भी काल खंड को देखा जाये उसमें प्रायः हमारे शाश्वत जीवन मूल्यों को परिपुष्ट करने के लिए सृजन हुआ है. जो कहानी, कविता अथवा अन्य विधा की रचनाएं हमारे जीवन मूल्यों को, बुनियादी बातो की अनदेखी करें या उन पर चोट करके कमज़ोर बनाने के उत्प्रेरक कारक का काम करें, वे हमारी गौरवशाली साहित्यिक परंपरा की संवाहक कदापि नही हो सकतीं. कहने का अभिप्राय यह है कि साहित्य का प्राथमिक ध्येय व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की सकारात्मक सोच के साथ कदमताल करना ही होना चाहिए.

अंजना 'सवि' के कहानी संग्रह 'फरिश्ता' की अधिकांश कहानियां इन बातो के प्रति सतर्क दिखाई देती हैं. इन कहानियों मे नैराश्य के बीच से आशा और अंधेरे के बीच से उजाले की राह दिखाई गयी है. वे कहती हैं कि व्यक्ति अपना धैर्य न खोये, समझदारी से काम ले तो बड़ी से बड़ी मुसीबत से पार हो सकता है. इसका यह अर्थ न लगाये जाये कि अंजना जी की कहानियां उपदेशो से भरी पड़ी हैं. कथाकार ने इन कहानियो मे कहीं भी उपदेशक बनने की कोशिश नही की है. मैंने पाया है कि उन्होंने कहानियो मे भाषा और कथानक को लेकर सायास चमत्कार पैदा करने के प्रयास से स्वयं को बचाया है. कहानियो के कथानक सहज-सरल और रोज़मर्रा की ज़िंदगी से उठाये हुए से लगते हैं. कहानी की संरचना को पुष्ट करने हेतु कथाकार ने यथा आवश्यक कल्पना की मदद लेने से परहेज़ नही किया है. प्रेम के जितने अधिक आयाम इस एक ही संग्रह मे प्रगट हुए हैं, उतने कम ही कहानी संग्रहों मे पढ़ने को मिलते हैं.

अब संग्रह की कहानियों की चर्चा. शीर्षक कहानी 'फरिश्ता' संग्रह मे १५ वे क्रम पर है. जात-पांत का बाहरी मुलम्मा न चढ़े तो मूलतः इंसान दरियादिल और सद्गुणी ही होता है. तब

वह अपने पराये की ओछी दीवारों से सर्वथा मुक्त भी रहता है और जो भी करता है - वह ईश्वर की मर्जी के अनुरूप ही होता है. 'फरिश्ता' कहानी में एक गरीब मुस्लिम दंपत्ति एक ऐसे नवजात शिशु का पालनहार बनता है, जिसकी मां उसको जन्म देकर ही इस दुनिया से विदा हो गयी थी और पिता के अलावा उसकी सार-सम्हाल के लिए दूजा कोई उपलब्ध नहीं था. अकेला पुरुष सब कुछ कर सकता है, लेकिन नारी की मदद के बिना दुधमुंहे बच्चे को नहीं पाल सकता, यह बिल्कुल सच है. मुस्लिम महिला का पति जो उसके बीमार रहने के कारण रोज़-रोज़ ज्वालामुखी सा उबलता रहता था, नवजात शिशु को एक फरिश्ते के रूप में देखकर शांत मन हो शिशु को खुदा की नियामत मान उसका सरपरस्त बनने के लिए बीवी के साथ खड़ा हो जाता है. 'घरौंदा' कहानी में दो सहेलियों की ज़िंदगी के उतार-चढ़ावों के माध्यम से इस सत्य को प्रतिपादित किया गया है कि मां-बाप अपनी संतान पर जो पाबंदियां लगाते हैं, उनके पीछे उनके भविष्य को उज्ज्वल बनाने की ही मंशा रहती है. जो युवा ऐसी पाबंदियों को अन्यथा लेते हैं, वे बाद में पछताते हैं. मौन में बहुत ताकत होती है. मौन प्यार की ताकत को नापा नहीं जा सकता. "मौन प्यार" कहानी में यह दर्शाया गया है कि प्यार सच्चा हो तो दो प्रेमियों के चिर मिलन को कोई नहीं रोक सकता, फिर चाहे स्थितियां कितनी ही प्रतिकूल क्यों न हो.

संग्रह की कहानियों में प्रेम के विविध रूपों के दर्शन होते हैं. यह प्रेम त्याग की भावना से अनुप्राणित प्रेम है. दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि इन कहानियों की रचना के लिए जिस प्रेम को बुनियाद बनाया गया है - वह एकाकी नहीं है, उसमें दोनों पक्षों की भावनाओं, अपेक्षाओं और अंतर्मन की पीड़ा का स्पंदन साफ़-साफ़ महसूस किया जा सकता है. 'कबूल है' कहानी के नायक विजय को ही लीजिए. एक बड़े उद्योगपति का बेटा था-वह चाहता तो बड़े घराने की बेटी से विवाह कर सकता था, किंतु उसने तो निश्चय कर लिया था कि वह स्कूल टीचर पवित्रा को ही जीवन संगिनी बनायेगा, और उसका संकल्प अंततः पूर्ण हुआ. पवित्रा भी कोई सुनिश्चित आश्वासन न होने के बावजूद भी विजय की सहचरी बनने के लिए प्रतिक्षारत रही. इससे भिन्न प्रेम का एक दूसरा ही रूप 'दिल की बात' कहानी में रेखांकित हुआ है. अशोक और शिवानी एक-दूसरे से प्रेम करते हैं, लेकिन जब अशोक शिवानी से पूछ बैठता है कि क्या उसकी मां सौतेली है ? शिवानी भड़क उठती है और शादी के लिए 'हां' करना तो दूर उससे बातचीत भी बंद कर देती है. वह अपनी दूसरी मां को 'सौतेली मां' स्वीकार करने को कतई तैयार न थी. अंततः मां की ममतामयी मध्यस्थता के परिणामस्वरूप दोनों रिश्ते की डोर से बंध जाते हैं. कहानी के उपसंहार में कथाकार ने कितनी बड़ी बात कही है - "नयी पीढ़ी नयी शब्दावली, नये अर्थ और नये मुहावरे गढ़ रही है. समाज की छाती पर उकेरे गये भ्रामक शब्द नये मंगल भावों के लिए जगह बना रहे हैं." स्पष्ट है कि रिश्तों की त्रासदी से जुड़े तंग स्वभाव की जगह सुलझे हुए ख्याल रखने लगे हैं. समाज में दबे पांव आ रहे इस परिवर्तन को अंजना जी ने बहुत खूबसूरती से इस कहानी में व्याख्यायित किया है. प्रेम का एक रूप वह भी होता है, जिसमें प्रेमी शारीरिक सुंदरता की बजाय मन की सुंदरता और गुणों की उज्ज्वलता को प्रधानता देते हैं. 'आत्म विश्वास' कहानी की नायिका सुधा एक हाथ बेकार होने के कारण हीन भावना से ग्रस्त प्रतिभाशाली युवक रवि को अंततः अपना जीवन साथी बनाने में सफल होती है. उसके मन में युवक के प्रति कोरी सहानुभूति का कहीं नामोनिशान नहीं था. नयी पीढ़ी में गुणों को प्राथमिकता देने के बढ़ते सोच को यह कहानी जाहिर करती है. ज़िंदगी की तल्खियों के कारण जीवन से विरक्त हुए व्यक्ति में जीवन के प्रति किस तरह पुनः चाव और उत्साह जगाया जा सकता है, यह 'छुपी कोशिश' कहानी में कथाकार ने बखूबी शब्दांकित किया है. कहानी के नायक का यह कथन निराशा पर आशा की विजय की कहानी कहता है - "अगर आप मुझे न सम्हालतीं, सहेजतीं तो मैं तो धीरे-धीरे खत्म हो रहा था. घर वालों को मुझसे बात करने का समय नहीं था और मैं विद्रोही, भटका इंसान अंधेरे में धंसता जा रहा था."

महिला लेखिकाओं की कहानियों में नारी सुलभ ज्ञान की सुंदर बानगी तो मिलेगी ही, ऐसा विश्वास पाठकों को रहता है. इस प्रकार की बानगी से कहानियों का लालित्य कई गुना बढ़ जाता है और वे जीवन के बहुत निकट लगती हैं. 'सबल' कहानी के प्रारंभ की ये पंक्तियां दृष्टव्य हैं - "एक रंगीन पीली सेल्फ चैक की साड़ी चौड़े प्रिंटेड बॉर्डर पर आंचल की सादगी देखते ही बनती है. वैदेही ने माणिक मोती और पन्ने से बना लंबा गुलूबंद, मांग का टीका और कानों में भारी झुमके पहन रखे हैं, जो बरबस ही सबका ध्यान आकर्षित कर लेते हैं." इस प्रकार के चित्रात्मक ब्यौरे कहानियों में कई जगह हैं. ये ब्यौरे कहानियों में अपेक्षित आनंद को बढ़ाने में सहायक बने हैं. 'सबल' कहानी विषयवस्तु की दृष्टि से भी संग्रह की एक सशक्त रचना है, जिसमें यह प्रतिपादित हुआ है किआस-पास सहयोगात्मक वातावरण हो तो बड़ी से बड़ी मुसीबत से भी इंसान लड़ सकता है और उस पर विजय पा सकता है. कहानी की नायिका वैदेही ब्रेन ट्यूमर से जूझ रहे अपने पति के मनोबल को किस तरह दृढ़ बनाती है, यह पढ़ने योग्य है. समस्याओं, चुनौतियों और प्रतिकूलताओं का सामना करते हुए ज़िंदगी को जीने योग्य बनाने के लिए मार्ग प्रशस्त करती इसी प्रकार की कुछ और भी कहानियां इस संग्रह में हैं. कुछ कहानियां ऐसी भी हैं, जिनमें नारी सशक्तिकरण की बात को काफी सज़ीदा ढंग से उठाकर यह बात प्रतिस्थापित की गयी है कि नारी सकारात्मक सोच को अपनाये, तो दुनिया का कोई लक्ष्य ऐसा नहीं है, जिसे वह नहीं पा सकती. मुझे यह निष्कर्ष दर्ज करने में कोई संकोच नहीं है कि संग्रह में ऐसी

कहानियां भी हैं, जिन्हें कहानी के पूरे संस्कार कथाकार नहीं दे पायी हैं. फलस्वरूप वे कमज़ोर रह गयी अर्थात् वे कथा रचना के प्रस्थान बिंदु से चली तो हैं, लेकिन कहानीत्व की मंजिल तक नहीं पहुंच सकी.

अंजना जी में अच्छी कथाकार की प्रायः सभी संभावनाएं विद्यमान हैं - सशक्त भाषा, सहज शिल्प, विषयवस्तु का वैविध्य, गहन पर्यवेक्षण-कौशल और 'कहन' की कला. यदि उन्हें कहानी-पथ पर सचमुच अपने सधे पैरों से सृजन-यात्रा जारी रखकर एक अच्छी कथाकार के रूप में अपना स्थान बनाना है तो अन्य विधाओं में लेखन की ओर से अपना ध्यान हटाकर उन्हें एकमेव कहानी लेखन के लिए ही साधना के स्तर पर समर्पित होना चाहिए. इस संग्रह ने उनके लेखन के प्रति पाठकों के मन में अपेक्षाएं बढ़ा दी हैं. बहरहाल जीवन के शिवम् पक्ष की पैरवी करने वाली कहानियों के अच्छे संग्रह के लिए अंजना जी को साधुवाद. उनका लेखन अब सतत चले, यह कामना है.

'व्यंकटेश कीर्ति', ११, सौम्या, एन्क्लैव एक्सटेंशन,
चूना भट्टी, कोलार रोड, भोपाल.

मातृत्व की पर्याय 'ज़मीन'

डॉ. कु. माया 'शबनम'

''ज़मीन'' (उपन्यास) : **डॉ. सूर्यदीन यादव**
प्रकाशक : सरिता प्रकाशन, ३ पुनीत कॉलोनी,
नडियाद-३८७००२ **मू.** : १५०/- रु.

डॉ. सूर्यदीन यादव की सद्य: प्रकाशित कृति 'ज़मीन' उपन्यास मेरे हाथ में है. इसके पूर्व भी उनके कई कहानी संग्रह, काव्यसंग्रह और उपन्यास तथा समीक्षा-ग्रंथ पढ़ चुकी हूं. यादवजी साहित्य की सभी विधाओं में लगातार अथक लिखते रहे हैं. वे दरअसल ग्रामीण अंचल परिवेश के संवेदनात्मक रचनाकार हैं.

अपने अंचल से दूर होकर भी उनका मोह अपनी जन्मभूमि से अटूट रूप से जुड़ा रहता है. गांव के प्रति उनकी संवेदना, मर्मांतक कराह, स्पष्ट दिखाई पड़ती है. उन्हें उनकी माटी की शक्ति लेखन के प्रति उत्प्रेरित करती रहती है.

डॉ. सूर्यदीन यादव के लेखन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे गांव और ज़मीन तथा वहां के जीवंत लोगों को लेकर औपन्यासिक ढांचा तैयार करते हैं. प्रस्तुत उपन्यास की भूमिका पढ़ने से ही 'ज़मीन' शीर्षक की सार्थकता एवं उपन्यास पढ़ने की उत्सुकता जागृत हो जाती है. कई प्रश्नों के पश्चात् 'ज़मीन' शब्द की व्याख्या सम्मुख हो पाती है. ऐसे लगता है मानो 'ज़मीन' शीर्षक भले ही जननी रूपा नारी का पर्याय है, किंतु जब 'ज़मीन' से इस शीर्षक ने जन्म लिया है, वह उपन्यास की अपनी ज़मीन है.

'ज़मीन' को नारी का पर्याय मानना, प्रतीक रूप से व्यक्त करना उचित है. कथाकार की यह सार्थक एवं स्वाभाविकोक्ति उपन्यास को नायिका प्रधान उपन्यास बना देती है. रवि नायकत्व करता सा प्रतीत होता है, उपन्यास में घटनाओं, उपघटनाओं का इतना मार्मिक, हृदयग्राही यथार्थ चित्रण है कि मानो लेखक ने स्वयं को अध्यापक रवि के रूप में स्थापित कर दिया है. और सामाजिक वृत्तियों का शोधार्थी बनकर पृष्ठ पर पृष्ठ रंगता जा रहा हो.

'ज़मीन' उपन्यास में नारी का रूप-विरूप वस्तुओं की तरह उपयोग-प्रयोग लेखक के हृदय की कराह बनकर जीवंत हो उठा है. यहां एक प्रश्न सालता है कि चहुमुखी समाज में आरोप, प्रत्यारोप, लांछन, शोषण, त्रास मात्र नारी को ही क्यों भुगतना पड़ता है ? पुरुष प्रधान समाज अपने किये कराये पापों, किकर्मों का आरोप मात्र नारी पर ही क्यों थोपना चाहता है ? नारी के हर कांड-प्रकांड में पुरुषों की भी भूमिका होती है. यह जानने के बावजूद कि सब कुछ पुरुष का ही किया कराया है. लेखक खेत में मिली लावारिस संतान (शिशु) को एक विधवा औरत की गोद में डलवा देता है. गांव के ज़मींदारों के द्वारा, खेत के मालिक द्वारा शिशु की असली मां को कहीं भगा दिया जाता है. नायक रवि से बढ़ईन काकी सत्य को बताती भी है - "रवि भाई साहब अब दिपाली पर कलंक थोपा जायेगा. गांव में चर्चा है. वो संतराम काका का बेटा केशराम और उनके नौकर की बेटी रमीली का लफड़ा है. सारा गांव जानता है. कोई बता रहा था, रमीली को गर्भ है."

काकी की सच बात सुन रवि भी सोचता है कि - "इस गांव में अच्छे प्रतिष्ठित लोग भी दूसरे की हांडी में मुंह डालते हैं. केशवराम की पत्नी तो काफी सुंदर है, फिर भी वह रमीली के साथ...!"

नारी की नारी ही शत्रु होती है, इस बात पर बल देते हुए लेखक ने लिखा है- "ज़मीन-ज़मीन से इतनी जलन क्यों रखती है ? नारी उत्थान एवं उसकी उन्नति-प्रगति के लिए नारी भी एक विरोधी तत्त्व है. नारी को नारी का पूर्ण सहकार, सौहार्द, प्यार, साथ जब तक नहीं मिलेगा तब तक मात्र पुरुष नारी के लिए कुछ नहीं कर सकता." यह नारी और पुरुष के बीच का तनाव पूरे उपन्यास में बना रहता है.

सामाजिक कुरीतियां, कुप्रथाएं, लाचारी, गरीबी, वगैरा नारी को अपने लाग-लपेट में बंदी बनाती हैं और असहाय नारी ही अपराधिनी घोषित की जाती है. वास्तव में पुरुष का पाप नारी

के पेट में पलता है, तो अपराधी बनकर पुरुष नहीं नारी ही सामने आती है, यह सच विधाता की विडंबना है. किंतु लेखक, साहित्यकार संवेद्य होते हैं, समाज के संरक्षक होते हैं, समाज सुधारक होते हैं. इसीलिए तो उपन्यासकार गुजरात की धरती पर सामाजिक कुरीतियों, भ्रष्टाचार, स्त्रीदोहन जैसी असह्य प्रवृत्तियों को ललकारते हुए कत्लेआम उद्‍घोषणा करता है - "स्त्री या पुरुष की नहीं, उस ज़मीन की हर उपज जायज, सार्वजनिक, सर्वप्रिय, अमूल्यनिधि है. ज़मीन किसी की निजी या बपौती नहीं होती है. वह सार्वजनिक बल्कि विश्व-धरोहर होती है. अनेक घर परिवार, गांव, समाज और देश बल्कि निज रक्त के फल को स्वीकार करने के बदले कहते हैं - "मैं पुलिस थान्हे पर रपट लिखवा दूंगा. और थान्हेदार डंडे मारकर कबूलवा लेगा कि बच्चा किसका है." तथा "हमारा धर्म है जीव सृष्टि, प्रकृतिदत्त बेमिसाल, बेजोड़, सुंदर, असुंदर, जायज, नाजायज, अमूल्य निधि को स्वीकार करना," उसे विविध कलाओं, परिधानों से अलंकृत करना और देश के काबिल बनाना. (भूमिका से)

'एक मौन ताप चलता दो ज़मीं के बीच चुपके.'

यह कहना अनुचित न होगा कि लेखक कृषक पुत्र होने के नाते पोषण करने वाली 'ज़मीन' से अभिन्न रूप से जुड़ा है. यही कारण है कि उपन्यास की प्रेरणा-धारा उसने ज़मीन से ही प्रेरित की है. मूलतः ज़मीन ही उसकी प्रेरणा-स्रोत है, ज़मीन ही बीज मंत्र है और ज़मीन ही लक्ष्य का पर्याय और प्रतीक है.

'ज़मीन' उपन्यास की नायिका दीपाली एक असहाय विधवा है किंतु वह चरित्रवान है, खुले विचारों वाली शुद्ध-बुद्ध महिला है. जो अपने पिता की ज़मीन की सुरक्षा के लिए अपनी सारी शक्ति लगा देती है. किंतु है तो वह असहाय नारी ही. इसलिए गांव के शक्तिवान, समर्थ संतराम अपने बेटे केशव और नौकर की बेटी रमीली से जन्मे नाजायज बच्चे का आरोप उस (दीपाली) पर ही मढ़ देते हैं. सारा गांव इसी को सच मानकर उस बच्चे को दीपाली और साहब वनराज सिंह का पाप प्रमाणित करना चाहता है. एक तनावग्रस्त कथानक दर्शकों को संवेद्य बना देता है. काका संतराम पुलिस और दंड की धमकी देते हैं. किंतु मिथ्या आरोप को दीपाली किसी प्रकार स्वीकार नहीं करती. सारा गांव दीपाली को ही बलि का बकरा बनाना चाहता है. झगड़ा वीभत्स रूप ले इसके पूर्व ही वनराज सिंह एक मानवता भरी उद्‍घोषणा करके बाहुबलियों का मुख बंद करके असहाय दीपाली को नयी शक्ति और चेतना प्रदान करते हैं - "ठहरिए ! संतराम काका आप का बेटा नामर्द है. वह अपने बच्चे को स्वीकारने के लिए तैयार नहीं है, तो मैं तुम्हारे बेटे के पाप को अपने सिर पर लेने को तैयार हूं. मैं जैसे अपने बच्चों का पिता हूं वैसे एक और बच्चे का पिता बन जाऊंगा. क्या फर्क पड़ेगा."

'नहीं ! साहब आप देवता हैं. दूसरे के पाप की गठरी अपने सिर क्यों लादते हैं ?' दीपाली बोली.

"यह बच्चा तेरा मेरा नहीं है. केशवराम का भी नहीं है पर उस ज़मीन का है. मैं उस ज़मीन को भी अपनी समझता हूं. उस ज़मीन में कुछ भी कुटकुटार, मंदार, धतूरा, घास, पतवार, उग आता है, उसे भी उसी की कोख से जन्मा मानता हूं. जो ज़मीन का है उसे मैं सहर्ष स्वीकार करता हूं और तू उसे स्वीकार करके बिना पति के और बच्चे के जन्म के बिना ही मां बन जायेगी. लोग तो अनाथ को अपना लेते हैं. सीता जी का जन्म भी तो ज़मीन से हुआ था."

इस तरह अंत में ज़मीन का महत्त्व सर्वोपरि प्रमाणित हो जाता है, उसे जननी नारी का रूप माना गया है. उपन्यास अंततः चरम लक्ष्य को प्रमाणित करने में सक्षम होता है. जो पाठक के हृदय में गहरे बैठ जाता है कि वास्तव में कोई बच्चा नाजायज और अवैध नहीं होता है. वह गांव, समाज और राष्ट्र का भावी नागरिक होता है. उसे स्वीकार करना गांव, समाज और राष्ट्र का धर्म है.

उपन्यास की भाषा-शैली पूर्ण रूप से आंचलिक है. डॉ. सूर्यदीन यादव ने आंचलिक भाषा को ही सदा अपनाया है. कहीं कहीं कुछ भावात्मक भाषा दर्शनीय है - "बगल खेत में कुछ बोया है. यत्र-तत्र बीजांकुर फूट रहे हैं. बीजांकुर नहीं, लगता है सूर्योदय में ज़मीन के नये प्रेमांकुर फूट रहे हैं. धरती के गर्भ से बाजरी अंखुआई है. बीज और माटी का गहरा अटूट संबंध है. फूटते निकलते अंकुर पतिया रहे हैं. अंखुआ आये खेत को देखकर किसान की छाती गर-गज भर फूल उठती है."

उपन्यास में आयी एक कविता का अंश भी लक्ष्य की पुष्टि करता -

'इस ज़मीन में उगे हुए
अनेक प्रकार के वृक्ष-वनस्पतियां
नुकीली फुनगियां
कोपलें, पतियां, कलियां
लौंचियां, टहनियां, डालियां देखता हूं
हरी भरी प्रकृति के बीच
रंग-बेरंगे फूल
ये सब मानव के प्रतीक हैं

. . . .

तुम्हें नहीं, मुझे आवश्यकता है
उस ज़मीन की जहां मैं खड़ा रह सकूं.'

लक्ष्य और सिद्धांतों के धनी सृजनहार डॉ. सूर्यदीन यादव ने अब तक निरंतर साहित्य और समाज की सेवा की है. मैं उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करती हूं और उन्हें ऐसे शीर्ष साहित्यकारों में स्थापित होते देखना चाहती हूं जिनकी लेखनी से कालजयी कृतियां जन्म लेती हैं.

रुद्रभवन, सिरवारा रोड, सुलतानपुर (उ. प्र.)

अंतर्विरोधों और अंतर्द्वंदों को पकड़ने की कोशिश

✍ कमल चोपड़ा

''समकालीन सौ लघुकथाएं'' (लघुकथा संग्रह) : **डॉ. सतीश दुबे**
प्रकाशक : आकाश पब्लिशर्स, निकट संगम सिनेमा,
लोनी बॉर्डर, गाजियाबाद (उ. प्र.) **मू.** १५०/- रु.

अपने समय और समाज के सत्यों की पड़ताल तो बहुत से लेखक करते हैं, बहुत कम होते हैं जो अपनी पहचान बना पाने के साथ-साथ उस विधा को भी समृद्धि दे पाते हैं. अनेक सार्थक लघुकथाएं लिखने के साथ-साथ डॉ. सतीश दुबे ने 'लघुकथा विधा' को भी एक पहचान और समृद्धि दी है.

डॉ. सतीश दुबे की लघुकथाएं अपनी सूक्ष्म संवेदनाओं, मानवीय मूल्यों, मनोवैज्ञानिक समझ, प्रामाणिक अनुभवों, सामाजिक विकृतियों, जटिल संबंधों, गहन मनोभावों और सहज भाषा शिल्प के लिए जानी जाती हैं.

'सिसकता उजास', 'भीड़ में खोया आदमी', 'राजा भी लाचार है', 'प्रेक्षागृह' लघुकथा संग्रहों के बाद 'समकालीन सौ लघुकथाएं' डॉ. सतीश दुबे का पांचवां लघुकथा संग्रह है. इस संग्रह की लघुकथाएं इसका साक्ष्य हैं कि यहां तक आते-आते रचनाकार की सृजनात्मक परिपक्वता और प्रतिभा के आयामों को कुछ और विस्तार मिला है.

इन लघुकथाओं में जीवन की छोटी-छोटी घटनाएं अनुभूतियां, संवेदनाएं और मानवीय संबंधों, नगरीय जीवन और उससे प्रभावित जीवन के अनेक रूप आकार पा सके हैं.

डॉ. सतीश दुबे की लघुकथाओं में पर्याप्त विषय वैविध्य है. हालांकि इन लघुकथाओं के विषय जाने-पहचाने हैं, रोज़मर्रा की ज़िंदगी से जुड़े उपेक्षणीय और सामान्य लेकिन इनकी नवीनता इनके दृष्टिकोण और प्रस्तुति में है.

सतीश दुबे की लघुकथाएं किसी कला, मांग या विमर्श के दबाव में भाषाई अस्पष्टता या उलझाव का शिकार नहीं होती बल्कि एक सहज भाषा शिल्प के साथ कथापन को बचाये रखती हैं.

डॉ. सतीश दुबे की अधिकांश लघुकथाओं में भूख, गरीबी, बरोज़गारी, जात-पात, सांप्रदायिकता, धर्म परिवर्तन, धार्मिक उन्माद, संवेदनहीनता, राजनैतिक चरित्रहीनता, कुरीतियां, जहालत, अमानवीयता आर्थिक विषमता, अशिक्षा, अभाव, शोषण, भौतिकता, बाजारवाद, स्त्री-प्रताड़ना, सांस्कृतिक संकटों और संबंधों के अवमूल्यन, आदि को विषय-वस्तु बनाया गया है.

अपनी सृजनात्मक सामर्थ्य के सहारे सतीश दुबे कथ्य से जुड़े किसी विशेष पहलू को सूक्ष्म दृष्टि से पकड़ते हैं और पूरी तटस्थता और कौशल के साथ प्रस्तुत करते हैं. शुद्ध भाषा और स्थितियों के साथ एकाकार होते हुए लिखने का गुण दुबे की लघुकथाओं की विशेष पहचान है.

'खिलौना' लघुकथा के माध्यम से उठाया गया प्रश्न कि बच्चियों को खिलौना समझकर उन्हें कब तक खरीदा-बेचा जायेगा ? उनके साथ कब तक खेला जायेगा ? और कि बाजार में गुड्डों की बजाय गुड़ियां ही क्यों अधिक बिकती हैं ? समाज के संवेदनहीन होते जाने की ओर इशारा करता है.

'चिड़िया ने कहा' लघुकथा में ईंट, पत्थर और सीमेंट के बने कंक्रीट के जंगलों में रहने वाले मानव की हृदयहीनता की वजह से हंसी-खुशी, हरियाली और शुभ-शगुन के प्रतीक पक्षियों के धीरे-धीरे लुप्त होने के संकट को एक चिड़िया के माध्यम से व्यक्त किया गया है. 'चौखट' लघुकथा में जीवन और चौखट से जुड़ी सुखद यादों, भावनाओं, क्षणों और अनुभवों को शास्त्रों और सिद्धांतों से कहीं बड़ा और महत्वपूर्ण बताया है. जहां शास्त्र और सिद्धांत निरर्थक और महत्वहीन हो जाते हैं, मानवीय जीवन से जुड़ी संवेदनाएं अत्यंत महत्वपूर्ण.

'शिष्यत्व' लघुकथा में एक निम्न जाति के लेकिन अत्यंत होनहार छात्र को एक उच्च जाति के शिक्षक द्वारा नकारने और अपमानित करने का संवेदनात्मक चित्रण हुआ है. इतनी प्रगति के बावजूद इस घृणित परंपरा के जीवित होने और पुष्ट होते चले जाने का प्रमाण है.

'सुहाग का चूड़ा' और 'इनायत' लघुकथाओं में विवाह के नाम पर हो रही सौदेबाजी, शोषण का चित्रण है.

इन लघुकथाओं की ज़मीन काल्पनिक वायवीय न होकर वास्तविक अनुभव की ज़मीन है. कथ्य की केंद्रियता लेखक की एक विशेष खूबी है जो इन्हें विशिष्ट लघुकथाकार के रूप में स्थापित करती है.

'स्टेटस सिंबल' लघुकथा बाजारवाद और उपभोक्ता संस्कृति के मायाजाल में फंसे सामान्यजन का चित्रण है जो दिखावे के चक्कर में बेवकूफ बनने के बावजूद अपने पर सुरखाब के पर लग जाने जैसा अनुभव करते हैं.

'नान लिविंग किंग' में संवेदनहीन होती जा रही आज की पीढ़ी का चित्रण है. कुछ लघुकथाओं में बहुत सटीक प्रतीकों का सहारा लिया गया है - 'उसूल', 'काग', 'भगौड़े', 'कुत्ते', 'रेवड़मन', 'पेड़', 'रामभरोसे का जटायू', 'कौए'...आदि आदि.

इन लघुकथाओं को पढ़ते हुए निरंतर अहसास होता है कि इनमें एक गहराई, एक गहन विचार, मानवीयता के प्रति आस्था और घटनाओं का अंकन महज घटना बन कर नहीं बल्कि जीवन का सच बनकर सामने आता है.

मुस्लिम समाज में व्याप्त कुरीतियों और आडंबरों पर लेखक ने कई यादगार लघुकथाएं लिखी हैं. प्रस्तुत संग्रह में भी कई लघुकथाएं हैं जो मुस्लिम परिवेश का बारीकी से अध्ययन और चित्रण करती हैं. 'इनायत', 'रिश्तों की सरहद', 'अल्ला के नाम', 'इलहाम'

इस संग्रह की लघुकथाओं के पात्र त्रासद, कठिन और जटिल परिस्थितियों में फंसकर हारकर खत्म होने वाले न होकर अंत तक जूझने वाले पात्र हैं जो लेखक की उर्ध्वगामी अपराजेय सकारात्मक सोच का परिचायक है. 'सुहाग का चूड़ा' की दुल्हन हो या 'इनायत' की जुबेदा, 'शिष्यत्व' का रतीराम चौहान... 'प्रतिरोध' का गोलू, 'फिनिक्स' का पिता, 'फ़लसफ़ा' का भील, 'शेड्स' का चित्रकार, 'ख़ुशबू' की बाई... आदि-आदि ऐसे ही पात्र हैं.

डॉ. सतीश दुबे की लघुकथाओं में भाषिक रचाव कथ्यानुरूप होता है. भाषा कहीं कहीं स्थानीय रंग लिये हुए होती है जो यथार्थ को अधिक पुख्ता करती है. 'अल्ला के नाम' का उर्दू मिश्रित संवाद हो या 'जीवन फ़रोश' में राजस्थानी भाषा. हालांकि ये लघुकथाएं वस्तु शिल्प भाषा या कथ्य के स्तर पर कोई नयी ज़मीन नही तोड़तीं फिर भी इनमें बहुत कुछ ऐसा है जो इन्हे खास बनाता है.

१६००/११४, त्रिनगर, दिल्ली-११००३५

व्यंग्य की एक और 'लाईन'

ज्ञान वर्मा

''दूसरी लाईन'' (व्यंग्य संग्रह) : **पी. दयाल श्रीवास्तव**
प्रकाशक : शैवाल प्रकाशन, डी. आई. जी. आवास के सामने, चंद्रावती कुटीर, दाऊदपुर, गोरखपुर-२७३००१. **मू.** १०० रु.

व्यंग्य लेखन व्यक्ति को सही मार्ग दिखाने का उत्तम कार्य करता है. किसी रत्न की परीक्षा प्रत्येक व्यक्ति नहीं कर सकता, उसे तो परिपक्व जौहरी ही पहचान सकता है. व्यंग्य लेखक भी साहित्य का असली कला पारखी होता है. पी. दयाल श्रीवास्तव के व्यंग्य संग्रह 'दूसरी लाईन' में उनके ३१ लेख संकलित हैं. उनकी अनुभवी आंखों ने वर्षों, आज के नग्न भ्रष्टाचार का जो दृष्य देखा, सुना, पढ़ा, महसूस किया और जो हो रहा है उसका दर्शन प्रथम लेख 'भ्रष्टाचार योग पाठशाला' में हो जाता है. जब संत भ्रष्टाचारी के रूप में शिष्यों को अवगत कराते हैं और करोड़ो-अरबों रुपये कैसे डकारे जाते हैं, इसका योग सिखाते हुए व्यंग्यपूर्ण भाषा मे खुलासा करते हैं. तथा इस दुर्व्यवस्था के लिए लानत भेजते हैं.

राजनीति की एक अहम भूमिका है जो दिन-प्रतिदिन लंपट और आदमखोर होती जा रही है. इस देश में ग़रीब व्यक्ति सजा का हकदार हो जाता है, लेकिन बड़ा आदमी बच निकलता है. 'नेता जी की जेल' में पंच सितारा वातावरण सुरा-सुंदरी, सेक्स, चमचे, कोर्ट-कचहरी का सूक्ष्म ढंग से ऑपरेशन किया गया है. आज की राजनीति कितनी गिर चुकी है - उस पर तीखी छुरी चलाई है.

भीड़तंत्र और जीवन की आपाधापी में मनुष्य इस प्रकार खो गया है कि भीड़ के इस जंगल से बच निकलना चाहता है. वह इस प्रकार का मनोरंजन चाहता है जो उसको गुदगुदाए, खिलखिलाये और मस्तिष्क को सुकून दे. उसे लगे कि जो वह पढ़ रहा है वह उसकी ज़िंदगी का अहम हिस्सा है. ऐसा मनचाहा सुकून व्यंग्य-साहित्य ही दे सकता है. 'बदमाश आदमी-दो दृश्य' इस संदर्भ का उत्तम लेख है. एक तो सच्चाई और तिस पर चोरों और साहबों का चरित्र - काला धंध. - आज की सच्चाई को जग जाहिर करता है. 'नोबल-पुरस्कार की चाहत में' व्यंग्य परोधा हरिशंकर परसाई एवं के. पी. सक्सेना जैसे सिद्धहस्त व्यंग्य-साहित्यकारों को भी लेखक ने मान और सम्मान दिया है, ये अलग बात है कि व्यंग्यकारों को देश-दुनिया में अभी तक नोबल पुरस्कार से उपेक्षित रहना पड़ा है. 'टांग मार संस्कृति' आज के युग की सही पहचान है. घर, दफ्तर, स्कूल, बस, ट्रेन, क्लब, खेत-खलियान, स्टेज - सब ओर एक दूसरे के कार्यों में टांग मारी जा रही है.

आज देश में विचारों का अंत हो चुका है. देश वहशीपन की ओर मुड़ चुका है. नग्नता, स्वार्थ, झूठ, फरेब उसकी पहचान है. राजनीति का अपराधीकरण अपने चरम पर है. विधान सभाओं से लेकर संसद तक अपराध प्रवृत्ति के लोगों का बोलबाला हो चुका है. कानून को धता दिखायी जा रहा है. यही चिंता आज प्रत्येक बुद्धिजीवी को सता रही है. व्यंग्य लेखन के जरिये दयाल साहब ने अपनी चिंता अच्छे चिंतन के साथ प्रस्तुत की है - जिससे मन में गुदगुदाहट भी हो और चुभन भी. 'हिट लिस्ट में शुमार न होने का दुख' और 'धीरज भाई धरमपुरा वाला इक्कीसवीं सदी के गेट पर' कुछ इसी प्रकार की रचनाएं हैं.

सेक्स की नग्नता, देह व्यापार, रैकिटों का भंडाफोड़, पराई स्त्री के संसर्ग के लिए अपनी बीबी छोड़, दूसरे की ओर मुड़ना... खेल का मैदान हो या रेल का डिब्बा, जेल हो या घर प्रत्येक ओर मनुष्य की गिरावट पर तीखे प्रहार करते 'दूसरी लाईन' के व्यंग्य लेख आश्वस्त करते हैं. सरकारी तंत्र का तो बुरा हाल है. चपरासी से लेकर बाबू और बड़े अफ़सर तक भ्रष्टाचार में लिप्त हैं. बिना कुछ दिये कोई काम होता ही नही. 'पॉकेट नहीं कटवा पाने पर आत्मग्लानि बोध' सरकारी तंत्र के इसी जुर्म का भंडा फोड़ करता है. जेब कतरे तो जेब नहीं काट पाते, लेकिन मामूली क्लर्क पांच सौ के नोट पर भी नाक-भौं सिकोड़ता है. कितनी शरम की बात है कि पलने में खेलती बच्ची और ७० वर्ष की बुढ़िया के साथ बलात्कार हो रहा है, काले शीशों वाली बंद गाड़ी में बलात्कार की निर्ममता जग-जाहिर है. बाहर के देशों में बादशाहों को उनके जुर्म मे फांसी पर लटकाया जा रहा है. अपने देश में फांसी के सजायाफ्ता पर राजनीति हो रही है और भयानक अपराधियों को बचाया जा रहा है. एक

शराबखाने में लगभग २०० सभ्रांत व्यक्तियों (हालांकि हमारी दृष्टि में वे जंगली थे) के सामने शराब परोसने वाली लड़की को गोली से उड़ाया जा रहा है और अपराधी बाइज्जत बरी हो जाता है. एक युवती के टुकड़े करके तंदूर में जलाये जाते हैं, अपराधी को फांसी की सज़ा के बाद भी वी. आई. पी. जेल में वर्षों से पाला-पोसा जा रहा है. आये दिन प्रिंट और दृश्य मीडिया के अनुरूप साधू-संत, वकील, न्यायाधीश-सब भ्रष्टाचार में लिप्त हैं. एक वकील बाइज्जत बरी होने के बाद जनता की आवाज़ पर पुनः फांसी की सजा पाता है. (भले ही सालों-साल न लगे) एक डॉन का प्रत्यारोपण इसलिए कराया था कि उस पर मुकदमा चलाकर उसे उम्रकैद या फांसी दी जा सके. आज वह राजनैतिक पार्टी बनाकर नेतागिरी कर रहा है.

लेखक का चिंतन कहीं दूर तक और गहरे तक असर करता है. सागर की अतल गहराई में उतरकर जैसे रत्न ढूंढकर लाये जाते हैं. विविध विषयों को समेटती हुई इस कृति में केवल राजनैतिक नेतृत्व के नकारेपन का ही जिक्र नहीं है, बल्कि भाषा, बोली और साहित्य के प्रश्न भी उभरे हैं. जांच आयोगों की निष्क्रियता पर भी लेखक अपने विचार प्रकट करता है. साथ ही विदेश नीति की गतिविधियों पर भी वह दो टूक राय रखता है.

'दूसरी लाईन' में पति-पत्नी के लिए मिलन इजाजत-पत्र देना और लाईन में लगना मात्र मनोरंजन ही नहीं है, अपितु नग्नता का ही उदाहरण है कि सरकार दूसरी लाईन के लिए डबल पैसा वसूलकर उसका काम आसान कर देती है. कहना न होगा कि नेता, अफ़सर, उद्योगपति की घातक तिकड़ी ने देश को जर्जर बनाने की क़सम खा रखी है. देश का धन स्विस बैंकों की शोभा बढ़ा रहा है. मज़दूर आदमी गिड़गिड़ा रहा है. उसे न ठीक रोटी मिलती है न कपड़ा और न सिर छिपाने के लिए छत!

पुस्तक अत्यंत रोचक एवं साहित्यिक भाषा का उद्घाटन करती हुई पाठक को बांधे रखती है. इस कृति के सभी लेख प्रकाश-स्तंभ हैं - जो मनुष्य को सही रास्ता दिखाते हैं और इस संघर्ष के लिए लेखक की ईमानदारी अवश्य दृष्टिगोचर होती है. ऐसी पठनीय पुस्तक की ज़रूरत भी है और प्रत्येक पाठक वर्ग के लिए अच्छे और सुलझे हुए व्यंग्य लेखन का होना भी ज़रूरी है.

रवींद्र साहित्य कुंज,
१०३ प्रताप विहार पार्ट-१, दिल्ली-११००८६

अविश्वास

(लघुकथा)

डॉ. कमल चोपड़ा

अपनी सफ़ाई में उसने एक शब्द भी नहीं जोड़ा था. जो हुआ था उसका सच-सच बयान कर दिया था कि वह माल पहुंचाकर पेमेन्ट लेकर आ रहा था कि नेहरू नगर की झुग्गियों के पास उसे कुछ गुंडों ने घेर लिया और चाकू दिखा कर उससे दस हजार रुपये लूट लिये. देखो ये मेरे फटे हुए कपड़ों में खरोंचें... कहते-कहते उसका गला रूंध गया और आंखें गीली हो आयीं.

उल्टा उसी पर बिफर पड़े मालिक - झूठ है यह सब. कपड़े खुद फाड़े जा सकते हैं. खरोंचें ख़ुद मारी जा सकती हैं. तुम जैसों की चालबाजियों से बख़ूबी वाकिफ़ हैं हम. यह ड्रामेबाजी छोड़ और सीधी तरह पैसे निकाल...

वह गिड़गिड़ाया - मालिक मेरा विश्वास करो, चार साल से आपके यहां काम कर रहा हूं. कभी कोई ऐसी बात हुई है ?

मालिक उसे चोर, झूठा, हरामखोर, बेईमान... वगैरह-वगैरह कहने लगे और उस पर किसी भी हालत में विश्वास करने को तैयार नहीं हुए. उन्होंने धमकाया कि वो सीधी तरह मान जाये नहीं तो वे उसे पुलिस के हवाले कर देंगे. वह गिड़गिड़ाता रहा कि उस पर विश्वास किया जाये.

लेकिन मालिक तो मालिक उसके साथ काम करने वालों ने भी उस पर विश्वास नहीं किया - हम क्या कह सकते हैं ! क्या पता क्या सच है और...!

उसे थाने ले जाकर मालिक ने पुलिसियों को सौ का नोट थमाया तो उन्होंने अपनी कारवाई शुरू कर दी. उसकी जमकर पिटाई की गयी तो वह बिलबिलाया कि तरस करो... ग़रीब आदमी हूं. मुझे तो पहले ही से गुंडों ने लूटा-पीटा है ऊपर से...? उसके पास कोई चारा नहीं था. उसने कहा - विश्वास करो या ना करो... पैसे तो मुझसे छिन गये हैं...अब जैसा भी है... मैं कहीं से भी कर्जा करके आपके पैसे चुका दूंगा. - 'अब आया ना सीधे रास्ते पर'. पुलिसियों और मालिक का चेहरा खिल उठा.

वह अपने गांव के साथियों के पास गया. पूरी बात बताकर हर्जाना भरने के लिये उनसे मदद मांगी तो वे बोले - 'कहीं तू सचमुच ही हमें भी कहानी तो नहीं पढ़ा रहा ?' वह अपने एक दो और जान पहचान वालों के पास गया और मदद मांगी लेकिन उन्होंने भी उस पर विश्वास नहीं किया. वह एकदम निराश हो आया - 'कोई किसी पर विश्वास करने योग्य क्यों नहीं ?'

उसे कहीं से मदद नहीं मिल पायी तो हारकर वह अपने घर लौटा. पत्नी को पूरी बात बताकर उससे उसके गहने मांगे ताकि पैसे चुका सके. पत्नी ने गहने तो दे दिये लेकिन रोते हुए बोली - 'मैं सब जानती हूं, तुम झूठ बोल रहे हो... तुमसे पैसे किसी ने नहीं लूटे ! ज़रूर तुम ये पैसे कहीं दारू या जुयेबाजी में लुटा कर आये हो और !'

भीतर तक आहत हो आया था वह. उसके अंदर कुछ डोलने लगा था. कहीं वाकई वह झूठ तो नहीं बोल रहा ?

१६००/११४, त्रिनगर, दिल्ली-११००३५

हक

✍ मुन्नू लाल

देखो,
अब तक सहा
नहीं कुछ कहा
पर अब सहूंगी नहीं
चुप रहूंगी नहीं.
भरपूर करूंगी प्रतिरोध
मत बढ़ाओ क्रोध
खबरदार !
हमें भी उतना ही हक है
घर से बाहर जाने का
जितना तुम्हें.
हमें भी उतना ही हक है
दोस्त बनाने का
छकने-छकाने का
रंगरेलियां मनाने का
जितना तुम्हें.
हमें भी उतना ही हक है
रोटी कमाने का
पसीना बहाने का
जितना तुम्हें !

ग्राम-पुरुषोत्तमपुर, पो. सोनपुर वाया गैसड़ी,
जिला. बलरामपुर (उ. प्र.) २७१२१०

स्वीकार

✍ राही शंकर

मेरे पास मेरा आकाश हो तो - साफ़ चमकता सा हो,
रात हो तो तारे हों,
सुबह हो तो सूरज हो,
चमक हो, गंभीरता हो, आग हो तो पूरी हो
गांव हो या शहर हो - मेरा हो,
मेरी तरह का हो,
मछलियों से भरा ताल हो,
पीपल की छांव वाला गांव हो,
शहर हो तो फुंफकारता समुद्र हो,
जो आकाश से बातें करती लहरों वाला हो
जो कुछ भी हो मेरे मुताबिक सा हो,
मगर सारा कुछ कहां किसी के मुताबिक होता है,
मेरे पास मेरा आकाश है -
धुंधला, मटमैला, रोता सा
कभी न धुल कर साफ़ होने वाला,
ज़मीन की धूल से गंदा हो गया आकाश
क्या करूं मेरा आकाश है, रोज पोंछता हूं
फिर भी कैसा अस्पष्ट सा दिखता है,
स्वीकार है जैसा भी है
गांव, शहर सब ओझल ओझल-सा लगता है,
अपना सा लगता ही नहीं
ताल में मछलियां मरी सी तैरती हैं,
और सूरज की आग कैसे बेचमक सी हो गयी है,
मेरी तरह - क्या करूं ?
यह धुंधलाया सा आकाश,
ठंडा सूरज, मरी मछलियां -
और अपना खालीपन
जो भी है सपने से परे मेरा है,
और स्वीकार है
मन या बेमन से सब स्वीकार
केवल स्वीकार.

शॉपी सेंटर, एस. बी. आई. के निकट,
बूटी मोड़, रांची-८३४००१

बीज

✍ सलीम अख़्तर

बीज का
केवल बरगद हो जाना ही
सब कुछ नहीं है
यदि कुछ है, तो वह
उसकी घनी छांव
उसकी शाखों पर स्थित
पक्षियों के सुरक्षित घोंसले
उसके फलों पर चहकते जीवन
उसके तने से
धागों की सूरत में लिपटी हुई
हमारी आस्थाएं
उसकी जड़ों पर
पसरी हुई चौपाल
चौपाल पर सिमट आना सारे गांव का
और, बंट जाना बरगद का
सारे गांव में.

वहीद मंजिल, अन्सारी वार्ड,
गोंदिया (महाराष्ट्र)-४४१६०१

राष्ट्र-घाती विपन्नता

✍ डॉ. रामदुलारे पाठक

(१)

जिस धरा का विश्व ने वंदन किया,
जिस धरा का भव्य अभिनंदन हुआ,
जिस धरा पर बस गये भगवान भी,
उस धरा का हाल यह कैसे हुआ ?
स्वयमेव मृगेंद्रता के शीर्ष से,
दीप्त है इस राष्ट्र की चिर-चेतना,
श्रृंग-सा भव का अटल यह दृढ़-व्रती,
वेदना विकराल क्यों है झेलता ?
क्या कभी यह सिंह से था खेलता ?

(२)

है कुहासे का सघन घेरा बड़ा,
थल-गगन के मध्य तम तन कर खड़ा,
कौन है कोना जहां हिम-कुंत के
दानवों का है नहीं डेरा पड़ा !
तड़ित की असि निशित से भयभीत हो,
कांपते पग, पवन कर जोड़े खड़ा,
शीत-झंझावात की खर मार से,
खो गयी मार्तंड की ऊर्जस्विता;
प्रकृति की भी दांव पर तेजस्विता !

(३)

वक्ष पर शिशु को लिये मां लुट गयी,
लुट गया सिंदूर सब के देखते,
दुधमुंही रोती बिखलती ही रही,
पयस-घट पर दंत दानव के गड़े;
बुझ गया दीपक प्रथम अभिसार का
जल गया सब नीड़ रातों-रात ही,
ज्योत्स्ना से अमल-धवल सुहाग के
नव-निलय में घुस गयी पवि-पातता;
है यही क्या देश की ओजस्विता ?

(३)

खा रही है बाड़ ही खेती यहां,
लंपटों ने है उठायी पालकी,
अस्मिता आघात सहती वक्ष पर,
संकटों में घिर गयी है आरती;
हो गयी है विफल अब मध्यस्थता,
देश की चिंता समर कैसे टले,
सब कमंडल तो हलाहल से भरे
किंतु विषधर है अभी फुफकारता;
दैव ! कैसी क्रूर काल-करालता ?

(५)

डूबने को है हमारी अस्मिता,
त्राण पाने के लिए तिनका नहीं,
है कहां जो नग्न-पद ही दौड़ कर,
ग्राह मुख से द्विप-चरण है खींचता;
जल रहा श्रीखंड-वन करता रुदन,
जल रहा धू-धू शिखर केसर-सदन
जल रहा कामाक्ष्यादिक का भवन
सो गयी है देश की जीवंतता,
राष्ट्र-घाती व्याप्त भूरि विपन्नता

✉ ५/१३०, महावीर गंज-२, फर्रुखाबाद-२०९६२५

ग़ज़लें

✍ राजेंद्र तिवारी

सिर्फ़ देखे जो बुराई वो नज़र मत देना,
बद्दुआ निकले तो लफ़्ज़ों में असर मत देना.
ज़हर पी लेंगे न हों वक़्त के सुकरात तो क्या,
कह के देना हमें धोखे से मगर मत देना.
जिसकी दीवारों से बरसे है फ़कत ख़ुदगर्ज़ी,
उससे बेघर ही भला हूं प वो घर मत देना.
यूं तो होती है परिंदों को परों की ख़्वाहिश,
जिनमें परवाज़ न हो मुझको वो पर मत देना.
बन के बादल जो न बरसो तो कोई बात नहीं,
प्यास के मारों को सहरा का सफ़र मत देना.

हौसला है उमंग है भाई,
दिल नहीं हाथ तंग है भाई.
ये चकाचौंध है जो दौलत की,
एक अंधी सुरंग है भाई.
दिल किसी का है जां किसी की है,
ये भी जीने का ढंग है भाई.
हारने का भी है मज़ा जिसमें,
एक ऐसी भी जंग है भाई.
ऐसे फूलों से फ़ायदा क्या है,
जिनमें ख़ुश्बू न रंग है भाई.
वो मेरे साथ-साथ क्या चलता,
वो तो दुनिया के संग है भाई.
दुश्मनों से भी प्यार से मिलना,
ये हमारा ही रंग है भाई.

✉ तपोवन, ३८-बी, गोविंद नगर, कानपुर-२०८००६

भूख से बेख़बर

✍ अनार सिंह वर्मा

उन्हें नहीं पता
कि क्या होती है भूख ?
हर समय भरा रहता है
उनका पेट
उठते-बैठते, चलते-फिरते
बतियाते
हर समय चलता रहता है
बकरियों की तरह
उनका मुंह,
वे क्या समझें
भूख की पीड़ा
उनके शब्दकोश में ही नहीं है
'भूख' शब्द,
वे जब सुनते हैं
भूख से होती मौतों के समाचार
तो एक अजीब हंसी हंसते हैं वो
उन्हें यकीन ही नहीं होता
कि यहां हर रोज़ सोते हैं
लाखों लोग भूखे,
वे जब चमचमाती गाड़ियों में बैठकर
काले शीशे से देखते हैं
कुछ-कुछ इंसान से दिखने वालों के
हाथों में कटोरा
तो वे एक घृणात्मक हंसी हंसते हैं,
वे भूखों को देखना
अशुभ मानते हैं,
भूखों से मिलना
तौहीन मानते हैं,
भूखे उनके लिए इंसान नहीं
'रास्ता काटती बिल्लियों' के मानिंद हैं,
भूख उनसे बहुत दूर है
और वे भूखों से बहुत दूर हैं.

✍ 'मधुबन', दीनदयाल कॉलोनी, लक्ष्मी टॉकीज गली,
जिला-एटा, कासगंज (उ. प्र.)२०७१२३.

ग़ज़लें

✍ डॉ. नसीम अख़्तर

कटार, तीर, तमंचा, लड़ाई क्या जानें,
शजर-मिज़ाज हैं हम, हाथापाई क्या जानें.
मुजस्समे हैं सभी मेरे गिर्द पत्थर के,
वो ज़ख़्म-ज़ख़्म जिगर की दवाई क्या जानें.
हमारी नेक है फ़ितरत तो नेकी करते हैं,
बुराई सीखी नहीं तो बुराई क्या जानें.
जिन्हें नसीब नहीं पेट के लिए रोटी,
किताबें कैसे ख़रीदें, पढ़ाई क्या जानें.
पले-बढ़े हैं जो आग़ोश में बुराई की,
वो नेकियों की अदाएं, भलाई क्या जानें.
किसी का साथ नहीं छोड़ते ज़ुबां देके,
वफ़ा शआर हैं हम, बेवफ़ाई क्या जानें.
अभी तो इश्क के मैदान में हैं नव वारिद,
ये तितलियां अभी दर्दे जुदाई क्या जानें.
चराग़ देखिए अब हंस रहे हैं सूरज पर,
ज़मीं के ज़र्रे, फ़लक की बड़ाई क्या जानें.

✍ जे. ४/५९, "गुलशने-अबरार",
मुहल्ला-हंस तले, वाराणसी-२२१००१

✍ डॉ. सुरेंद्र वर्मा

अजनबी था अज़ीज़ महमान भी था,
दुश्मन था मेरा, मेहरबान भी था.
सब कुछ लुटा के रईस जब वो बने,
गर्दिशे हाल में क़ीमती अहसास भी था.
कहां हो गया गुम बता दे वो सफ़ा,
नाम भी लिख्खा था जहां निशान भी था.
क्यों लगायी आग तुमने मिरे महल्ले में,
वहीं तो ज़ालिम तेरा मकान भी था.
जोशो ख़रोश से मिला था वो हमसे,
पर उसका अंदाज़ थोड़ा उदास भी था.
क्या हुआ उसे अब नहीं आती हंसी,
ख़ुश था मेरा यार, ख़ुशबयान भी था.
बात उसकी सुनाई दी साफ़ साफ़,
गो वो बहरा था, बेज़बान भी था.
गुनाहे लज्जत से बच न पाया वो,
मुश्ताक़ था हाथ में उसके जाम भी था.

✍ १० एचआईजी, १-सर्कुलर रोड,
इलाहाबाद (उ. प्र.) २११००१

सुबह होने से पहले

✍ डॉ. वरुण कुमार तिवारी

मेरे दोस्त !
भिगो मत देना
जीवन को आंसुओं से.
रोते-झीकते रहने से
बन जाता है जीवन
एक खुरदुरी चट्टान,
सुबह होने से पहले
चमकते हैं कुछ शब्द
रोज़ रात को
स्याह आकाश में,
क्षितिज के आंगन में
विस्तार पाने के लिए,
कि मधुर मुस्कान का
प्रतिफलन
एक मधुर विश्राम,
कि हास्य की पुलकन से
बन जाता है जीवन
उत्सव महान.
इसलिए
स्वागत करो खिलखिलाकर
एक दूध मुंहे दिन के
जन्म का
जो वक़्त के चेहरे पर फैली
उदासी को ले जायेगा उड़ाकर
बहुत दूर
बादलों के गांव में.

स्टेट बैंक कॉलोनी, वीरपुर (बिहार) - ८५४३४०

आश्चर्य मत करना !

✍ आनंद बिल्थरे

आश्चर्य मत करना,
अगर किसी दिन,
काला सूरज उगे,
चंद्रमा से
लहू टपके,
नदियों में
कीड़े बिलबिलायें,
समुद्र का,
पेट फट जाये,
वनस्पतियां अपना
धर्म छोड़ दें,
खेतों में उगें
गोली, बंदूक, बम,
सरे आम घूमें,
बलात्कारी,
भ्रष्टाचारी,
वर्दीधारी,
जनता के अंगूठे
पहले ही काटकर,
रख लिये जायें,
तिजोरी में,
वह दिन,
आज नहीं तो कल,
आयेगा ज़रूर,
तुम, ज़रा भी,
आश्चर्य मत करना !

प्रेमनगर, बालाघाट (म. प्र.) - ४८१००१.

कथाबिंब

को प्रकाशन के २९ वें वर्ष में
प्रवेश पर *अशेष* शुभकामनाएं

❋

एक शुभेच्छु

: प्राप्ति - स्वीकार :

शहर गवाह है (उपन्यास) : **डॉ. रूपसिंह चंदेल,** भावना प्रकाशन,१०९-ए, पटपड़गंज, दिल्ली-११००९१. मू.४५०/-
सच्चिदानंद (उपन्यास) : **दर्शन मितवा,** उड़ान पब्लिकेशन्स, वाटर वर्क्स रोड, मनसा (पंजाब) १५१५०५. मू. ११०/-
फिर वही तलाश (कथा संग्रह) : **डॉ. डी. के. गर्ग,** क्षितिज प्रकाशन, १०१ हंस भवन, नयी दिल्ली-११०००२. मू. १५०/-
काठ की टांगें (कथा संग्रह) : **डॉ. देवेंद्र सिंह,** अभिधा प्रकाशन, रामदयालुनगर, मुजफ्फरपुर-८४२००२. मू. १२५/-
पहली बरसात (क. सं.) : **हरि प्रकाश राठी,** राजस्थानी ग्रंथागार, सोजती गेट, जोधपुर (राज.). मू. १००/-
गिरवी है जनतंत्र (निबंध) : **डॉ. सोहन शर्मा,** उज्जवल ध्रुवतारा प्रकाशन, ४४ पटेल नगर कॉलोनी, वाराणसी-२२१००२. मू. १५०/-
अक्षय गोजा के नाम पारदर्शी चिठ्ठियां (पत्रादि) : **सं. डॉ. रमेश नीलकमल,** मीनाक्षी प्रकाशन, एम. बी. ३२/२ बी, गली नं. २, शकरपुर, दिल्ली-११००९२. मू. १००/-
कविता के क्षेत्र में अक्षय गोजा (गद्य) : **सं. डॉ. रमेश नीलकमल,** मीनाक्षी प्रकाशन, एम. बी. ३२/२ बी, गली नं. २, शकरपुर, दिल्ली-११००९२. मू. ३००/-
बिजनेस सीक्रेट (हास्य-व्यंग्य) : **राजेंद्र प्रकाश वर्मा,** साई प्रकाशन, कवि-कुटीर, ६/११/२५५, मुगलपुरा, फैजाबाद-२२४००१ मू. ३०/-
अकारण (कविता सं.) : **राजेंद्र आहुति,** अभिधा प्रकाशन, रामदयालुनगर, मुजफ्फरपुर-८४२००२. मू. १५०/-
फैजाबाद रोड, लखनऊ-२२६०१९. मू. २५०/-
काव्यांचल (काव्य) : **सं. मुरलीधर पांडेय,** संयोग प्रकाशन, २०४/ए, चिंतामणि, आर. एन. पी. पार्क, भायंदर (पू.), मुंबई ४०११०५
नंगे पांव ज़िंदगी (क. सं.) : **अनिला सिंह चाड़क,** जीवन प्रभात प्रकाशन, मुंबई-४०००६३. मू. १५०/-
शमा फिर जल उठी (क. सं.) : **प्रमिला शर्मा,** लोचन कला अकादमी, मुंबई-४०००२०. मू. १००/-
यादें (क. सं.) : **बृजेंद्र अग्निहोत्री,** जिला कारागार के पीछे, मनोहर नगर, फतेहपुर-२१२६०७. मू. १५०/-
खुशबू (ग. सं.) : **ऋषिवंश,** डायमंड पॉकेट बुक्स, एक्स-३० ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-२, नयी दिल्ली-११००२०. मू. ७५/-
अंतस (ग. सं.) : **अरविंद 'असर',** श्वेता प्रकाशन, २६८/४६/६६ डी, खजुहा, तकिया चांद अली शाह, लखनऊ-२२६००४. मू. ७५/-
कंपन करती धरती (नवगीत) : **किरण मिश्र,** संस्कार साहित्य माला, ४०७ कृष्णा विहार, टाटा कंपाउंड इर्ला ब्रिज, अंधेरी (प.), मुंबई-४०००५८. मू. १००/-

'किरण देवी सराफ़ ट्रस्ट' (मुंबई) के सौजन्य से प्रकाशित पुस्तकें

बंदना के फूल (काव्य) : **जनार्दन मणि त्रिपाठी** (मू. १००/-) ● **बंसी शतक** (काव्य) : **सिपाही पांडेय 'मनमौजी'** (मू. १००/-)
सप्तरंगी सुमन (ग़ज़ल संग्रह) : **मरयम ग़ज़ाला** (मू. १००/-) ● **सूर्योदय** (गीत) : **प्रतिमा अष्ठाना** (मू. १५०/-)

संस्कृति संरक्षण संस्था

पंजीकरण संख्या : E 23216/7-2-2006

ए-१० 'बसेरा,' ऑफ दिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई - ४०० ०८८ फोन : ०२२-२५५१५५४१

आयकर अधिनियम की धारा ८०-जी के अंतर्गत प्रमाणपत्र (११-०९-०६ से ३१-०३-०८ तक वैध)

संस्था का प्रमुख उद्देश्य ऐसे व्यक्तियों को साथ में लाकर एक ऐसा मंच उपलब्ध कराना है जो संस्कृति संरक्षण में विश्वास रखते हों और समय-समय पर निजी तौर पर से स्थानीय कार्यक्रम करते रहते हैं. इन व्यक्तियों को एक मंच प्रदान पर, एकजुट करके बिखरती संस्कृति का संरक्षण किया जा सके.

अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए संस्था का प्रथम प्रयास है कि लगभग आधा एकड़ ज़मीन प्राप्त कर संस्था के भवन का निर्माण किया जाये जहां संस्था की विभिन्न गतिविधियां संचालित व आयोजित की जा सकें.

संस्था की कुछ गतिविधियां हैं -

- संगीत, नृत्य व ललित कलाओं की कक्षाएं चलाना.
- साहित्य व भाषा संबधी कार्यक्रमों का आयोजन.
- साहित्यिक पत्रिका ("कथाबिंब") का प्रकाशन.
- पुस्तकालय चलाना.
- देश के विभिन्न राष्ट्रीय पर्वों व त्यौहारों पर कार्यक्रमों के आयोजन.

आयकर के 80 G अधिनियम के अंतर्गत संस्था का पंजीकरण हो गया है. सुहृदय दानदाताओं से प्रार्थना है कि वे संस्था की गतिविधियों को अपेक्षित गति देने के प्रयास में भागी हों. हर वर्ग के लोगों के सहयोग का स्वागत है.

'कथाबिंब' के आजीवन सदस्य

आजीवन सदस्यों के हम विशेष आभारी हैं. जिनके सहयोग ने हमें ठोस आधार दिया है. सभी आजीवन सदस्यों से निवेदन है कि वे एक या दो या अधिक लोगों को आजीवन सदस्यता स्वीकारने के लिए प्रेरित करें. संभव हो तो अपने संपर्क के माध्यम से विज्ञापन भी उपलब्ध करायें. **यदि विज्ञापन दिलवा पाना संभव हो तो कृपया हमें लिखें.**

१) श्री अरुण सक्सेना, नवी मुंबई
२) डॉ. आनंद अस्थाना, हरदोई
३) स्वामी विवेकानंद हाई स्कूल, कुर्ला, मुंबई
४) डॉ. डी. एन. श्रीवास्तव, नोएडा
५) डॉ. ए. वेणुगोपाल, मुंबई
६) डॉ. नागेश करंजीकर, मुंबई
७) डॉ. प्रेम प्रकाश खन्ना, मुंबई
८) श्री हरभजन सिंह दुआ, नवी मुंबई
९) डॉ. सत्यनारायण त्रिपाठी, मुंबई
१०) श्री उमेशचंद्र भारतीय, नवी मुंबई
११) श्री अमर ठाकुर, मुंबई
१२) श्री बी. एम. यादव, मुंबई
१३) डॉ. राजनारायण पांडेय, मुंबई
१४) सुश्री शशि मिश्रा, मुंबई
१५) श्री भगीरथ शुक्ल, बोईसर
१६) श्री कन्हैय्या लाल सराफ, मुंबई
१७) श्री अशोक आंद्रे, दिल्ली
१८) श्री कमलेश भट्ट 'कमल', मथुरा
१९) श्री राजनारायण बोहरे, दतिया
२०) श्री कुशेश्वर, कोलकाता
२१) सुश्री कनकलता, धनबाद
२२) श्री भूपेंद्र शेठ 'नीलम', जामनगर
२३) श्री संतोष कुमार शुक्ल, शाहजहांपुर
२४) प्रो. शाहिद अब्बास अब्बासी, पांडिचेरी
२५) सुश्री रिफ़अत शाहीन, गोरखपुर
२६) श्रीमती संध्या मल्होत्रा, यू. एस. ए.
२७) डॉ. वीरेंद्र कुमार दुबे, चौरई
२८) श्री कुमार नरेंद्र, दिल्ली
२९) श्री मुकेश शर्मा, गुड़गांव
३०) डॉ. देवेंद्र कुमार गौतम; सतना
३१) श्री सत्यप्रकाश, मुंबई
३२) डॉ. नरेश चंद्र मिश्र, नवी मुंबई
३३) डॉ. लक्ष्मण सिंह विष्ट, 'बटरोही,' नैनीताल
३४) श्री एल. एम. पंत, मुंबई
३५) श्री हरिशंकर उपाध्याय, मुंबई
३६) श्री देवेंद्र शर्मा, मुंबई
३७) श्रीमती राजेंद्र कौर, नवी मुंबई
३८) डॉ. कैलाश चंद्र भल्ला, नवी मुंबई
३९) श्री नवनीत ठक्कर, अहमदाबाद
४०) श्री दिनेश पाठक 'शशि', मथुरा
४१) श्री प्रकाश श्रीवास्तव, वाराणसी
४२) डॉ. हरिमोहन बुधौलिया, उज्जैन
४३) श्री जसवंत सिंह विरदी, जालंधर
४४) प्रधानाध्यापक, 'ब्लू बेल' स्कूल, फतेहगढ़
४५) डॉ. कमल चोपड़ा, दिल्ली
४६) श्री आर. एन. पांडे, मुंबई
४७) डॉ. सुमित्रा अग्रवाल, मुंबई
४८) श्रीमती विनीता चौहान, बुलंदशहर'
४९) श्री सदाशिव 'कौतुक', इंदौर
५०) श्रीमती निर्मला डोसी, मुंबई
५१) श्रीमती नरेंद्र कौर छाबड़ा, औरंगाबाद
५२) श्री दीप प्रकाश, मुंबई
५३) श्रीमती मंजु गोयल, नवी मुंबई
५४) श्रीमती सुधा सक्सेना, नवी मुंबई
५५) श्रीमती अनीता अग्रवाल, धौलपुर
५६) श्रीमती संगीता आनंद, पटना
५७) श्री मनोहर लाल टाली, मुंबई
५८) श्री एन. एम. सिंघानिया, मुंबई
५९) श्री ओ. पी. कानूनगो, मुंबई
६०) डॉ. ज. वी. यखमी, मुंबई
६१) डॉ. अक्षय शर्मा, जालंधर
६२) श्री राजेंद्र प्रसाद 'मधुबनी', मधुबनी
६३) श्री ललित मेहता 'जालौरी,' कोयंबटूर
६४) श्री अमर स्नेह, मीरा रोड, ठाणे
६५) श्रीमती मीना सतीश दुबे, इंदौर
६६) श्रीमती आभा पूर्वे, भागलपुर
६७) श्री ज्ञानोत्तम गोस्वामी, मुंबई
६८) श्रीमती राजेश्वरी विनोद, नवी मुंबई
६९) श्रीमती संतोष गुप्ता, नवी मुंबई
७०) श्री विशंभर दयाल तिवारी, मुंबई
७१) श्री अभिषेक शर्मा, नवी मुंबई

(अगले पृष्ठपर जारी)

'कथाबिंब' के आजीवन सदस्य....

७२) श्री ए. बी. सिंह, निंबोहड़ा, चितौड़गढ़
७३) श्री योगेंद्र सिंह भदौरिया, मुंबई
७४) श्री विपुल सेन 'लखनवी', मुंबई
७५) श्रीमती आशा तिवारी, मुंबई
७६) श्री गुप्त राधे प्रयागी, इलाहाबाद
७७) श्री महावीर रवांल्टा, बुलंदशहर
७८) श्री रमेश चंद्र श्रीवास्तव, इलाहाबाद
७९) डॉ. रमाकांत रस्तोगी, मुंबई
८०) श्री महीपाल भूरिया, मेघनगर, झाबुआ (म. प्र.)
८१) श्रीमती कल्पना बुद्धदेव 'व्रज', राजकोट
८२) श्रीमती लता जैन, नवी मुंबई
८३) श्रीमती श्रुति जायसवाल, मुंबई
८४) श्री लक्ष्मी सरन सक्सेना, कानपुर
८५) श्री राजपाल यादव, कोलकाता
८६) श्रीमती सुमन श्रीवास्तव, नयी दिल्ली
८७) श्री ए. असफल, भिंड (म. प्र.)
८८) डॉ. उर्मिला शिरीष, भोपाल
८९) डॉ. साधना शुक्ला, फतेहगढ़
९०) डॉ. त्रिभुवन नाथ राय, मुंबई
९१) श्री राकेश कुमार सिंह, आरा (बिहार)
९२) डॉ. रोहितश्याम चतुर्वेदी, भुज-कच्छ
९३) डॉ. उमाकांत बाजपेयी, मुंबई
९४) श्री नेपाल सिंह चौहान, नाहरपुर (हरि.)
९५) श्री रूप नारायण तिवारी 'वीरान', बिलासपुर
९६) श्री जे. पी. टंडन 'अलौकिक', फ़र्रुखाबाद
९७) श्री शिव ओम 'अंबर,' फ़र्रुखाबाद
९८) श्री आर. पी. हंस, मुंबई
९९) सुश्री अल्का अग्रवाल सिगतिया, मुंबई
१००) श्री मुन्नू लाल, बलरामपुर (उ. प्र.)
१०१) श्री देवेंद्र कुमार पाठक, कटनी
१०२) सुश्री कविता गुप्ता, मुंबई
१०३) श्री शशिभूषण बडोनी, मसूरी
१०४) डॉ. वासुदेव, रांची
१०५) डॉ. दिवाकर प्रसाद, नवी मुंबई
१०६) सुश्री आभा दवे, मुंबई
१०७) सुश्री रश्मि सक्सेना, मुंबई
१०८) श्री मुनी राज सिंह, मुंबई
१०९) श्री प्रताप सिंह सोढ़ी, इंदौर
११०) श्री सुधीर कुशवाह, ग्वालियर
१११) श्री राजेंद्र कुमार सक्सेना, दिल्ली
११२) श्री एन. के. शर्मा, नवी मुंबई
११३) श्रीमती मीरा अग्रवाल, दिल्ली
११४) श्री कुलवंत सिंह, मुंबई
११५) डॉ. राजेश गुप्ता, भुसावल
११६) श्री साहिल, वेरावल (गुज.)
११७) डॉ. माधुरी छेड़ा, मुंबई
११८) सुश्री मंगला रामचंद्रन, इंदौर
११९) श्री पवन शर्मा, जुन्नारदेव, छिंदवाड़ा (म. प्र.)
१२०) डॉ. भाग्यश्री गिरी, पुणे
१२१) श्री तुहिन मिश्रा, मुंबई
१२२) सुश्री मधु प्रसाद, अहमदाबाद
१२३) श्रीमती मंजु लाल, दिल्ली
१२४) श्री सतीश गुप्ता, कानपुर
१२५) डॉ. बी. जे शेट्टी, नवी मुंबई
१२६) श्रीमती कमलेश बख्शी, मुंबई
१२७) डॉ विश्वंभर नाथ सक्सेना, मुंबई
१२८) श्री युगेश शर्मा, भोपाल
१२९) श्री सलीम अख़्तर, गोंदिया (महा.)
१३०) डॉ लक्ष्मण प्रसाद, जमशेदपुर
१३१) श्री मनोज सिन्हा, हज़ारीबाग (झारखंड)
१३२) श्री प्रशांत कुमार सिन्हा, देवघर (झारखंड)
१३३) श्रीमती मधु प्रकाश, मुंबई
१३४) श्री कृष्ण राघव, मुंबई
१३५) श्री सलाम बिन रज़ाक, मुंबई
१३६) डॉ. राजेश वर्मा, मुंबई
१३७) डॉ. मुकुल नारायण देव, मुंबई
१३८) डॉ. गजानन ल. भाले, न्यू पनवेल
१३९) श्री दयाशंकर 'सुबोध', दमोह
१४०) डॉ. रमेंद्र शंकर, मुंबई
१४१) श्री आदर्श भार्गव, मुंबई
१४२) श्री प्रताप सिंह राठौर, अहमदाबाद
१४३) सुश्री ऊषा मेहता दीपा, चंबा (हि. प्र.)
१४४) श्री रमाकांत दीक्षित, कल्याण, ठाणे
१४५) श्रीमती प्रमिला शर्मा, मुंबई

T. A. CORPORATION

8, Dewan Niketan, Chembur Naka, Chembur, Mumbai - 400 071.
Ph. :(Off) : + 91-22-2522 3613 / 5597 4515 ● Fax : + 91-22-25223631
Email : tac@vsnl.com ● Web : www.chemicalsandinstruments.com

-: Offers :-

- H.P.L.C. GRADE CHEMICALS
- SCINTILLATION GRADE CHEMICALS
- GR GRADE CHEMICALS
- BIOCHEMICALS
- STANDARD SOLUTIONS
- HIGH PURITY CHEMICALS
- ELECTRONIC GRADE CHEMICALS
- LR GRADE CHEMICALS
- INDICATORS
- LABORATORY INSTRUMENTS

Manufactured by :

PRABHAT CHEMICALS

C1B, 1909, G.I.D.C., Panoli, Dist. Bharuch, Gujarat,
Ph. : 02646-272332
email : response@prabhatchemicals.com
website : www.prabhatchemicals.com

Stockist of :

- ❒ **Sigma, Aldrich, Fluka, Alfa, (U.S.A)**
- ❒ **Riedel (Switzerland)**
- ❒ **Merck (GDR)**
- ❒ **Lancaster (UK)**
- ❒ **Strem (UK)**

“कंप्यूटर के विविध उपयोग और हिंदी”

एक-दिवसीय संगोष्ठी

१३ अक्तूबर २००७

- आयोजक -

संस्कृति संरक्षण संस्था, मुंबई

- सहआयोजक -

स्वामी शिक्षण संस्था, मुंबई

: स्थल :

एकर्स क्लब, बैंकट हाल
सिंधी सोसायटी, चेंबूर, मुंबई ४०००७१

: वार्ताओं के विषय एवं वार्ताकार :

१. *कंप्यूटरों में हिंदी का प्रयोग : वर्तमान स्थिति* : डॉ. रेखा गोविल, वनस्थली
२. *प्रौद्योगिकी अभिसरण और हिंदी का प्रयोग* : डॉ. ए. जी. आप्टे, भा. प. अ. केंद्र
३. *सी-डेक का हिंदी कंप्यूटिंग में योगदान* : डॉ. हेमंत दरबारी, सी-डेक, पुणे
४. *कंप्यूटर और इंटरनेट* : श्री सूरज प्रकाश, आर. बी. आई., पुणे
५. *हिंदी का उपयोग समस्याएं व सुझाव* : श्री अनूप सेठी, मुंबई
६. *हिंदी फॉन्टस : समस्याएं व सुझाव* : डॉ. रविंद्र हंस, भा. प. अ. केंद्र
७. *हिंदी शब्द तंत्र की उपयोगिता* : श्री प्रभाकर पांडेय, भा. प्रौ. संस्थान, मुंबई
८. *हिंदी शब्द-संसाधन, समस्याएं व सुझाव* : श्री अर्जुन महतो, भा. प्रौ. संस्थान, मुंबई

आर. एन. आई. पंजीकरण संख्या : ३५७६४/७९

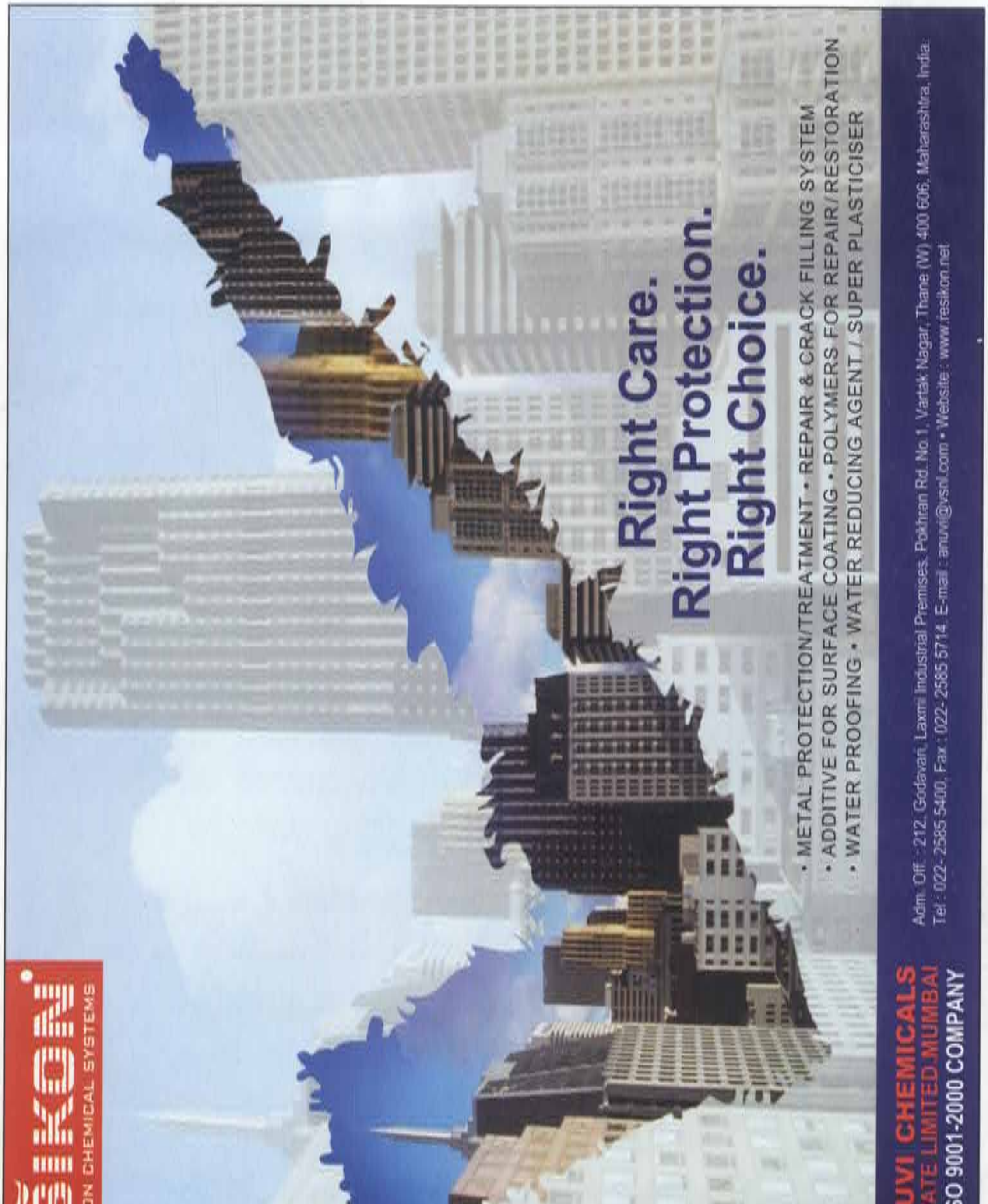

मंजुश्री द्वारा संपादित व **आर्ट होम**, शांताराम साळुंके मार्ग, घोडपदेव, मुंबई - ४०० ०३३ में मुद्रित.
टाइप सेटर्स : **वन-अप प्रिंटर्स**, १२वां रास्ता, द्वारका कुंज, चेंबूर, मुंबई - ४०० ०७१. फो. : २५२१ ६२८४.